* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये
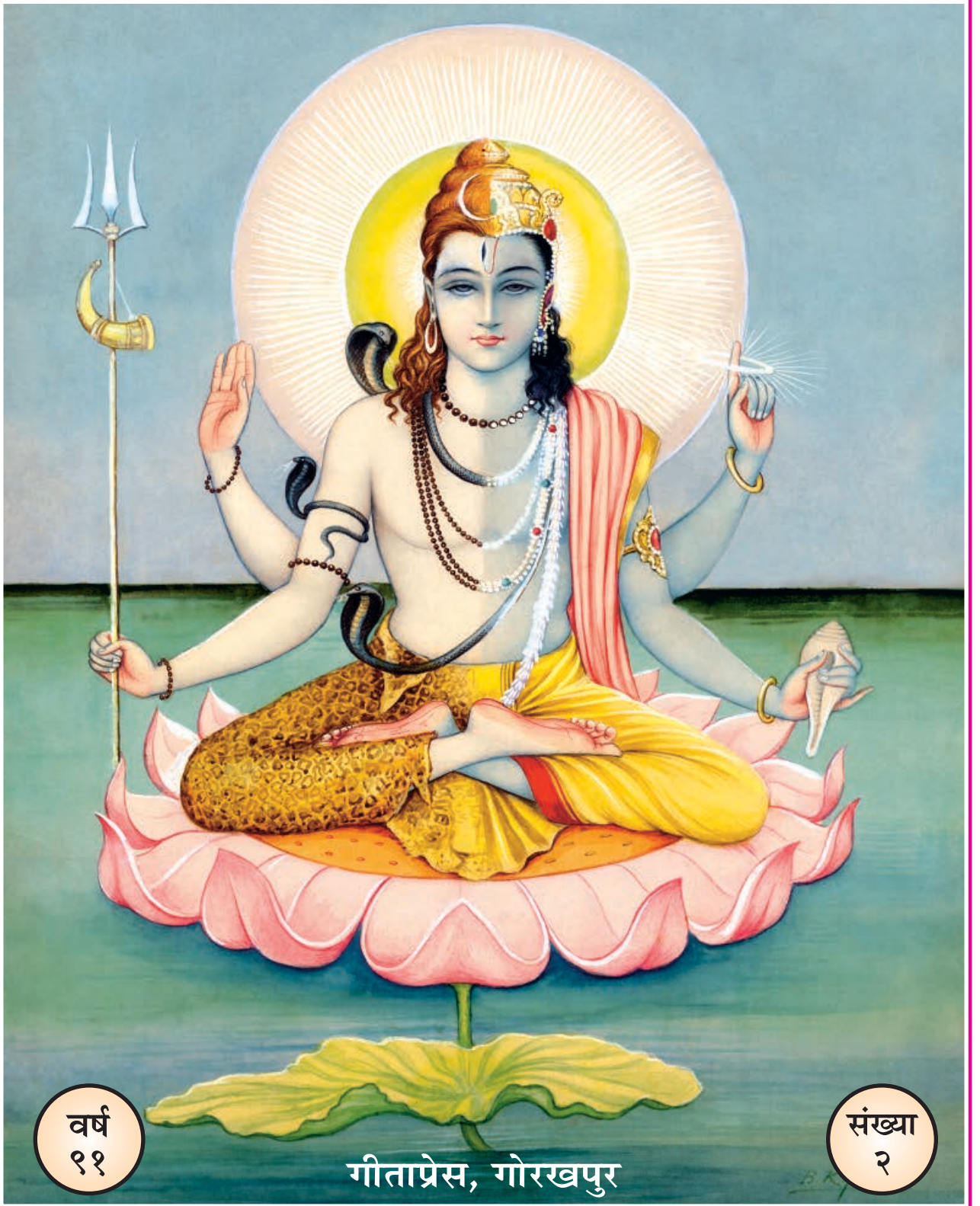
भगवान् श्रीहरिहर

उमासहित भगवान् मृत्युंजय

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

वन्दे वन्दनतुष्टमानसमतिप्रेमप्रियं प्रेमदं पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम्।
सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम्॥

वर्ष ९१

गोरखपुर, सौर फाल्गुन, वि० सं० २०७३, श्रीकृष्ण-सं० ५२४२, फरवरी २०१७ ई०

संख्या २

पूर्ण संख्या १०८३

श्रीमृत्युञ्जयशिव-ध्यान

हस्ताम्भोजयुगस्थकुम्भयुगलादुद्धृत्य तोयं शिरः
सिञ्चन्तं करयोर्युगेन दधतं स्वाङ्के सकुम्भौ करौ।
अक्षस्त्रङ्मृगहस्तमम्बुजगतं मूर्धस्थचन्द्रस्त्रव-
त्पीयूषार्द्रतनुं भजे सगिरिजं त्र्यक्षं च मृत्युञ्जयम्॥

जो अपने दो करकमलोंमें रखे हुए दो कलशोंसे जल निकालकर उनसे ऊपरवाले दो हाथोंद्वारा अपने मस्तकको सींचते हैं। अन्य दो हाथोंमें दो घड़े लिये उन्हें अपनी गोदमें रखे हुए हैं तथा शेष दो हाथोंमें रुद्राक्ष एवं मृगमुद्रा धारण करते हैं, कमलके आसनपर बैठे हैं, सिरपर स्थित चन्द्रमासे निरन्तर झरते हुए अमृतसे जिनका सारा शरीर भींगा हुआ है तथा जो तीन नेत्र धारण करनेवाले हैं, उन भगवान् मृत्युंजयका, जिनके साथ गिरिराजनन्दिनी उमा भी विराजमान हैं, मैं भजन (चिन्तन) करता हूँ। [शिवपुराण-सतीखण्ड]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर फाल्गुन, वि० सं० २०७३, श्रीकृष्ण-सं० ५२४२, फरवरी २०१७ ई०

विषय-सूची

चित्र-सूची

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क सजिल्द ₹२२०

पंचवर्षीय शुल्क सजिल्द ₹११००

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क — **वार्षिक** US$ 50 (₹3000), **पंचवर्षीय** US$ 250 (₹15,000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**राधेश्याम खेमका**, सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | **09235400242/244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु- gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ें।

कल्याण

***याद रखो*—**प्रतिध्वनि ध्वनिका ही अनुसरण करती है और ठीक उसीके अनुरूप होती है, इसी प्रकार दूसरोंसे हमें वही मिलता है और वैसा ही मिलता है, जैसा हम उनको देते हैं। अवश्य ही, वह मिलता है बीज-फल-न्यायके अनुसार कई गुना बढ़कर!

***याद रखो*—**सुख चाहते हो, दूसरोंको सुख दो; मान चाहते हो, मान प्रदान करो; हित चाहते हो, हित करो; और बुराई चाहते हो तो बुराई करो। याद रखो जैसा बीज बोओगे वैसा ही फल मिलेगा। फलकी न्यूनाधिकता जमीनके अनुसार होगी।

***याद रखो*—**हिंसापरायण लोग अपनी हिंसाके फलसे स्वयं नष्ट हो जाते हैं और जो साधु-स्वभावके लोग हैं, वे अपनी साधुताके परिणामस्वरूप समस्त पापोंसे छूट जाते हैं। हिंसा हिंसकको खा जाती है और साधुता पापकी प्रचण्ड अग्निसे साधुको बचा लेती है।

***याद रखो*—**हिंसासे साधुताकी तुलना वैसे ही नहीं हो सकती, जैसे जहरसे अमृतकी। साधु पुरुष जैसे अपने स्वाभाविक आचरणोंसे जगत्‌में प्रेम, करुणा, क्षमा और एकात्मताका विस्तार किया करते हैं, वैसे ही हिंसक मनुष्य वैर, निर्दयता, क्रोध और अनात्मीयताका प्रसार करते हैं।

हिंसकोंसे इस जगत्‌में दु:ख बढ़ता है और परलोक बिगड़ता है; दूसरी ओर साधुओंसे जगत्‌में सुख-शान्ति फैलती है और परलोक तो बनता ही है। साधुताका फल देरसे भले ही हो, पर होता है अमृतमय।

***याद रखो*—**मनुष्यको पापसे सदा सावधान रहना चाहिये। जरासे पापको भी सहन करना पापके विशाल वृक्षकी जड़ जमाना है। मनुष्य जब एक बार पापको स्वीकार करके उसमें फँस जाता है तो फिर वह दिनोंदिन उसीमें लिपटता ही चला जाता है और आगे चलकर उसीके संगमें सुखका—यहाँतक कि कर्तव्यका अनुभव करने लगता है। उसके पापोंकी एक ऐसी दृढ़ और मोहक शृंखला बन जाती है, जिसके बन्धनसे वह सहज ही कभी छूट नहीं सकता और उसके नये-नये रूपोंपर मोहित होता रहता है।

***याद रखो*—**पाप करते समय अज्ञानवश सुखका बोध होता है। उस समय परिणाम सामने नहीं होता, परंतु परम्परासे चली आयी हुई परिणामकी एक कल्पना मनमें होती है, जो पापकर्मका सम्पादन करनेके बाद उसे धिक्कारती और डराती है, परंतु पाप करते-करते वह कल्पना भी मिट जाती है और पापमें ही गौरव-बुद्धि हो जाती है। फिर उसकी बुद्धि सहज ही पुण्यको पाप और पापको पुण्य देखती है। मनुष्यकी यह स्थिति बहुत ही निराशाजनक होती है।

इसलिये निरन्तर पापियोंके संगसे बचना और साधुओंके संगमें रचना-पचना चाहिये। बुद्धिके विपरीत निर्णयसे, सम्भव है एक बार इसमें प्रत्यक्ष हानि दिखलायी दे; परंतु यह निश्चय है कि पापात्माओंके संगका परिणाम दु:ख और साधुओंके संगका परिणाम सुख अनिवार्य है। साधु-संगका महत्त्व समझनेके बाद बननेवाला साधु-संग तो इतना विलक्षण होता है कि उससे दु:ख-बीजका सर्वथा नाश और सात्वत—आत्यन्तिक सुखकी सहज प्राप्ति हो सकती है।

'शिव'

आवरणचित्र-परिचय—

भगवान् श्रीहरिहर

एक बार देवोंने विष्णुभवनमें पहुँचकर उन्हें नमस्कार करनेके बाद जगत्‌के अशान्त होनेका कारण पूछा। भगवान् विष्णुने उनके प्रश्नको सुनकर कहा—हम सभी लोग शिवजीके पास चलें। वे महान् ज्ञानी हैं। इस चराचर जगत्‌के व्याकुल होनेका कारण वे जानते होंगे। वासुदेवके ऐसा कहनेपर इन्द्र आदि देवगण जनार्दन भगवान्‌को आगे करके मन्दरपर्वतपर गये। किंतु वहाँ उन्होंने न तो महादेवको देखा, न देवी पार्वती और न नन्दीको ही। अज्ञानके अन्धकारमें पड़े हुए उन लोगोंने पर्वतको देवशून्य देखा। तब विष्णुने दर्शन प्राप्त न होनेके कारण सकपकाये हुए देवोंको देखकर कहा—क्या आपलोग सामने स्थित महादेवको नहीं देख रहे हैं? उन्होंने उत्तर दिया—हाँ, हमलोग गिरिजापति देवेशको नहीं देख रहे हैं। हमलोग उस कारणको नहीं जानते, जिससे हमारी देखनेकी शक्ति नष्ट हो गयी।

जगन्मूर्ति विष्णुने उनसे कहा—आपलोग मृडानीका गर्भ नष्ट करनेके कारण महापापसे ग्रस्त हो गये हैं, इसलिये शूलपाणि महादेवने आपलोगोंके सम्यक् अवबोधको और विचारशक्तिको अपहृत कर लिया है। इस कारण आप सब सामने स्थित शंकरको देखकर भी नहीं देख रहे हैं। अत: सब लोग विश्वासके साथ शरीरकी पवित्रता और देवका दर्शन प्राप्त करनेके लिये तप्तकृच्छ्र-व्रतद्वारा पावन होकर स्नान करें और महादेवको दूधसे स्नान करानेके लिये डेढ़ सौ घड़ोंका प्रयोग करें।

इस प्रकार कहनेपर इन्द्र आदि देवताओंने शरीरकी शुद्धिके लिये तप्तकृच्छ्रव्रतका एकान्त अनुष्ठान किया। उसके बाद पापसे छूटकर देवताओंने कहा—जगन्नाथ! केशव! आप कृपया यह बतलाइये कि शम्भु किस स्थानपर अवस्थित हैं? जिन्हें हमलोग दूध आदिके अभिषेकसे विधिपूर्वक स्नान करायें। उसके बाद विष्णुने देवताओंसे कहा—देवताओ! मेरे शरीरमें ये शंकर संयुक्त होकर स्थित हैं। क्या आपलोग नहीं देख रहे हैं?

उन लोगोंने विष्णुसे कहा कि हमलोग तो आपमें त्रिपुरनाशक शंकरको नहीं देख रहे हैं। सुरेशान! आप सच बतलाइये कि महेश किस स्थानपर स्थित हैं? तब विष्णुने देवताओंको अपने हृदयकमलमें विश्राम करनेवाले शंकरके लिंगका दर्शन करा दिया। उसके बाद देवताओंने क्रमश: दूध आदिसे उस नित्य, स्थिर एवं अक्षय लिंगको स्नान कराया। फिर उन लोगोंने गोरोचन और सुगन्धित चन्दनका लेपनकर बिल्वपत्रों और कमलोंसे भक्तिपूर्वक उन देवकी पूजा की। फिर शंकरके एक सौ आठ नामोंका जप करनेके बाद उन्हें प्रणाम किया। सभी देवता यह विचारने लगे कि सत्त्वगुणकी प्रधानतासे विष्णु एवं तमोगुणकी अधिकतासे आविर्भूत शिवमें एकता किस प्रकार हुई? देवताओंके विचारको जानकर अविनाशी व्यापक भगवान् विश्वमूर्ति हो गये। फिर तो देवताओंने एक ही शरीरमें कानमें सर्पके कुण्डल पहने; सिरपर आपसमें चिपके लम्बे बालके जटाजूट बाँधे; गलेमें सर्पके हार लटकाये; हाथमें पिनाक, शूल, आजगव धनुष, खट्वांग धारण किये तथा घण्टासे युक्त बाघाम्बर धारण करनेवाले त्रिनेत्रधारी वृषध्वज महादेव और साथ ही कमलके कुण्डलधारी; गरुडध्वज; हार और पीताम्बर पहने; हाथोंमें चक्र, असि, हल, शार्ङ्गधनुष, टंकार-सी ध्वनि करनेवाले शंखको लिये गुडाकेश विष्णुको देखा। उसके बाद 'सर्वव्यापी अविनाशी प्रभुको नमस्कार है'—इस प्रकार कहकर ब्रह्मा आदि देवताओंने उन हरि एवं शंकरको एकरूप (अभिन्न) समझा। [**श्रीवामनपुराण**]

शिव-तत्त्व

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

शान्तं पद्मासनस्थं शशधरमुकुटं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं
शूलं वज्रं च खड्गं परशुमभयदं दक्षभागे वहन्तम्।
नागं पाशं च घण्टां प्रलयहुतवहं साङ्कुशं वामभागे
नानालङ्कारयुक्तं स्फटिकमणिनिभं पार्वतीशं नमामि॥*

शिव-तत्त्व बहुत ही गहन है। मुझ-सरीखे साधारण व्यक्तिका इस तत्त्वपर कुछ लिखना एक प्रकारसे लड़कपनके समान है। परंतु इसी बहाने उस विज्ञानानन्दघन महेश्वरकी चर्चा हो जायगी, यह समझकर अपने मनोविनोदके लिये कुछ लिख रहा हूँ। विद्वान् महानुभाव क्षमा करें।

श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास आदिमें सृष्टिकी उत्पत्तिका भिन्न-भिन्न प्रकारसे वर्णन मिलता है। इसपर तो यह कहा जा सकता है कि भिन्न-भिन्न ऋषियोंके पृथक्-पृथक् मत होनेके कारण उनके वर्णनमें भेद होना सम्भव है; परंतु पुराण तो अठारहों एक ही महर्षि वेदव्यासके रचे हुए माने जाते हैं, उनमें भी सृष्टिकी उत्पत्तिके वर्णनमें विभिन्नता ही पायी जाती है। शैवपुराणोंमें शिवसे, वैष्णवपुराणोंमें विष्णु, कृष्ण या रामसे और शाक्तपुराणोंमें देवीसे सृष्टिकी उत्पत्ति बतलायी गयी है—इसका क्या कारण है? एक ही पुरुषद्वारा रचित भिन्न-भिन्न पुराणोंमें एक ही खास विषयमें इतना भेद क्यों? सृष्टिके विषयमें ही नहीं, इतिहासों और कथाओंका भी पुराणोंमें कहीं-कहीं अत्यन्त भेद पाया जाता है। इसका क्या हेतु है?

इस प्रश्नपर मूल तत्त्वकी ओर लक्ष्य रखकर गम्भीरताके साथ विचार करनेपर यह स्पष्ट मालूम हो जाता है कि सृष्टिकी उत्पत्तिके क्रममें भिन्न-भिन्न श्रुति, स्मृति और इतिहास-पुराणोंके वर्णनमें एवं योग, सांख्य, वेदान्तादि शास्त्रोंके रचयिता ऋषियोंके कथनमें भेद रहनेपर भी वस्तुतः मूल सिद्धान्तमें कोई खास भेद नहीं है; क्योंकि प्रायः सभी कोई नाम-रूप बदलकर आदिमें प्रकृति-पुरुषसे ही सृष्टिकी उत्पत्ति बतलाते हैं। वर्णनमें भेद होने अथवा भेद प्रतीत होनेके निम्नलिखित कई कारण हैं—

१—मूल-तत्त्व एक होनेपर भी प्रत्येक महासर्गके आदिमें सृष्टिकी उत्पत्तिका क्रम सदा एक-सा नहीं रहता; क्योंकि वेद, शास्त्र और पुराणोंमें भिन्न-भिन्न सर्ग और महासर्गोंका वर्णन है, इससे वर्णनमें भेद होना स्वाभाविक है।

२—महासर्ग और सर्गके आदिमें भी उत्पत्ति-क्रममें भेद रहता है। ग्रन्थोंमें कहीं महासर्गका वर्णन है तो कहीं सर्गका, इससे भी भेद हो जाता है।

३—प्रत्येक सर्गके आदिमें भी सृष्टिकी उत्पत्तिका क्रम सदा एक-सा नहीं रहता, यह भी भेद होनेका एक कारण है।

* जो शान्तस्वरूप हैं, कमलके आसनपर विराजमान हैं, मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट धारण करनेवाले हैं, जिनके पाँच मुख हैं, तीन नेत्र हैं, जो अपने दाहिने भागकी भुजाओंमें शूल, वज्र, खड्ग, परशु और अभयमुद्रा धारण करते हैं तथा वामभागकी भुजाओंमें सर्प, पाश, घण्टा, प्रलयाग्नि और अंकुश धारण किये रहते हैं, उन नाना अलंकारोंसे विभूषित एवं स्फटिकमणिके समान श्वेतवर्ण भगवान् पार्वतीपतिको मैं नमस्कार करता हूँ।

४—सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और संहारके क्रमका रहस्य बहुत ही सूक्ष्म और दुर्विज्ञेय है, इसे समझानेके लिये नाना प्रकारके रूपकोंसे उदाहरण-वाक्योंद्वारा नामरूप बदलकर भिन्न-भिन्न प्रकारसे सृष्टिकी उत्पत्ति आदिका रहस्य बतलानेकी चेष्टा की गयी है। इस तात्पर्यको न समझनेके कारण भी एक-दूसरे ग्रन्थके वर्णनमें विशेष भेद प्रतीत होता है।

ये तो सृष्टिकी उत्पत्ति आदिके सम्बन्धमें वेद-शास्त्रोंमें भेद होनेके कारण हैं। अब पुराणोंके सम्बन्धमें विचार करना है। पुराणोंकी रचना महर्षि वेदव्यासजीने की। वेदव्यासजी महाराज बड़े भारी तत्त्वदर्शी विद्वान् और सृष्टिके समस्त रहस्यको जाननेवाले महापुरुष थे। उन्होंने देखा कि वेद-शास्त्रोंमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शक्ति आदि ब्रह्मके अनेक नामोंका वर्णन होनेसे वास्तविक रहस्यको न समझकर अपनी-अपनी रुचि और बुद्धिकी विचित्रताके कारण मनुष्य इन भिन्न-भिन्न नाम-रूपवाले एक ही परमात्माको अनेक मानने लगे हैं और नाना मत-मतान्तरोंका विस्तार होनेसे असली तत्त्वका लक्ष्य छूट गया है। इस अवस्थामें उन्होंने सबको एक ही परम लक्ष्यकी ओर मोड़कर सर्वोत्तम मार्गपर लानेके लिये एवं श्रुति, स्मृति आदिका रहस्य स्त्री, शूद्रादि अल्पबुद्धिवाले मनुष्योंको समझानेके लिये उन सबके परम हितके उद्देश्यसे पुराणोंकी रचना की। पुराणोंकी रचनाशैली देखनेसे प्रतीत होता है कि महर्षि वेदव्यासजीने उनमें इस प्रकारके वर्णन, उपदेश और आदेश किये हैं, जिनके प्रभावसे परमेश्वरके नाना प्रकारके नाम और रूपोंको देखकर भी मनुष्य प्रमाद, लोभ और मोहके वशीभूत हो सन्मार्गका त्याग करके मार्गान्तरमें नहीं जा सकते। वे किसी भी नाम-रूपसे परमेश्वरकी उपासना करते हुए ही सन्मार्गपर आरूढ़ रह सकते हैं। बुद्धि और रुचि-वैचित्र्यके कारण संसारमें विभिन्न प्रकारके देवताओंकी उपासना करनेवाले जनसमुदायको एक ही सूत्रमें बाँधकर उन्हें सन्मार्गपर लगा देनेके उद्देश्यसे ही शास्त्र और वेदोक्त देवताओंको ईश्वरत्व देकर भिन्न-भिन्न पुराणोंमें भिन्न-भिन्न देवताओंसे भिन्न-भिन्न भाँतिसे सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और लयका क्रम बतलाया गया है। जीवोंपर महर्षि वेदव्यासजीकी परम कृपा है। उन्होंने सबके लिये परमधाम पहुँचनेका मार्ग सरल कर दिया। पुराणोंमें यह सिद्ध कर दिया है कि जो मनुष्य भगवान्के जिस नाम-रूपका उपासक हो, वह उसीको सर्वोपरि, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, सम्पूर्ण गुणाधार, विज्ञानानन्दघन परमात्मा माने और उसीको सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु, महेशके रूपमें प्रकट होकर क्रिया करनेवाला समझे। उपासकके लिये ऐसा ही समझना परम लाभदायक और सर्वोत्तम है कि मेरे उपास्यदेवसे बढ़कर और कोई है ही नहीं। सब उसीका लीला-विस्तार या विभूति है।

वास्तवमें बात भी यही है। एक निर्विकार, नित्य, विज्ञानानन्दघन परब्रह्म परमात्मा ही हैं। उन्हींके किसी अंशमें प्रकृति है। उस प्रकृतिको ही लोग माया, शक्ति आदि नामोंसे पुकारते हैं। वह माया बड़ी विचित्र है। उसे कोई अनादि, अनन्त कहते हैं तो कोई अनादि, सान्त मानते हैं; कोई उस ब्रह्मकी शक्तिको ब्रह्मसे अभिन्न मानते हैं तो कोई भिन्न बतलाते हैं; कोई सत् कहते हैं तो कोई असत् प्रतिपादन करते हैं। वस्तुतः मायाके सम्बन्धमें जो कुछ भी कहा जाता है, माया उससे विलक्षण है; क्योंकि उसे न असत् ही कहा जा सकता है, न सत् ही। असत् तो इसलिये नहीं कह सकते कि उसीका विकृत रूप यह संसार (चाहे वह किसी भी रूपमें क्यों न हो) प्रत्यक्ष प्रतीत होता है और सत् इसलिये नहीं कह सकते कि जड दृश्य सर्वथा परिवर्तनशील होनेसे उसकी नित्य सम स्थिति नहीं देखी जाती एवं ज्ञान होनेके उत्तरकालमें उसका या उसके सम्बन्धका अत्यन्त अभाव भी बतलाया गया है और ज्ञानीका भाव ही असली भाव है। इसीलिये उसको अनिर्वचनीय समझना चाहिये। [**क्रमशः**]

शिवसे शिक्षा

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

भगवान् भूतभावन श्रीविश्वनाथके चरित्रोंसे प्राणियोंको नैतिक, सामाजिक, कौटुम्बिक—अनेक प्रकारकी शिक्षा मिलती है। समुद्र-मन्थनमें निकलनेवाले कालकूट विषका भगवान् शंकरने पान किया और अमृत देवताओंको दिया। राष्ट्रके नेता और समाज एवं कुटुम्बके स्वामीका यही कर्तव्य है, उत्तम वस्तु राष्ट्रके अन्यान्य लोगोंको देनी चाहिये और अपने लिये परिश्रम, त्याग तथा तरह-तरहकी कठिनाइयोंको ही रखना चाहिये। विषका भाग राष्ट्र या बच्चोंको देनेसे वैमनस्य और उससे सर्वनाश हो जायगा। शिवजीने न विषको हृदय (पेट)-में उतारा और न उसका वमन ही किया, अपितु कण्ठमें ही रोक रखा। इसीलिये विष और कालिमा भी उनके भूषण हो गये। जो संसारके हितके लिये विषपानसे भी नहीं हिचकते, वे ही राष्ट्र या जगत्‌के ईश्वर हो सकते हैं।

समाज या राष्ट्रकी कटुताको पी जानेसे ही नेता राष्ट्रका कल्याण कर सकता है। परंतु फिर भी उस कटुताका विष वमन करनेसे फूट और उपद्रव ही होगा। साथ ही उस विषको हृदयमें रखना भी बुरा है। अमृत-पानके लिये सभी उत्सुक होते हैं, परंतु विषपानके लिये शिव ही हैं; वैसे ही फलभोगके लिये सभी तैयार रहते हैं, परंतु त्याग तथा परिश्रमको स्वीकारनेके लिये महापुरुष ही प्रस्तुत होते हैं। जैसे अमृतपानके अनुचित लोभसे देव-दानवोंका विद्वेष स्थिर हो गया, वैसे ही अनुचित फलकामनासे समाजमें विद्वेष स्थिर हो जाता है।

शिवकुटुम्बका वैचित्र्य

शिवजीका कुटुम्ब भी विचित्र ही है। अन्नपूर्णाका भण्डार सदा भरा, पर भोलेबाबा सदाके भिखारी। कार्तिकेय सदा युद्धके लिये उद्यत, पर गणपति स्वभावसे ही शान्तिप्रिय। फिर कार्तिकेयका वाहन मयूर, गणपतिका मूषक, पार्वतीका सिंह और स्वयं अपना नन्दी और उसपर आभूषण सर्पोंके। सभी एक-दूसरेके शत्रु, पर गृहपतिकी छत्रछायामें सभी सुख तथा शान्तिसे रहते हैं। घर में प्राय: विचित्र स्वभाव और रुचिके लोग रहते हैं, जिसके कारण आपसमें खटपट चलती ही रहती है। घरकी शान्तिके आदर्शकी शिक्षा भी शिवसे ही मिलती है। भगवान् शिव और अन्नपूर्णा अपने-आप परम विरक्त रहकर संसारका सब ऐश्वर्य श्रीविष्णु और लक्ष्मीको अर्पण कर देते हैं। श्रीलक्ष्मी और विष्णु भी संसारके सभी कार्योंको सँभालने, सुधारनेके लिये अपने-आप ही अवतीर्ण होते हैं। गौरी-शंकरको कुछ भी परिश्रम न देकर आत्मानुसन्धानके लिये उन्हें निष्प्रपंच रहने देते हैं। ऐसे ही कुटुम्ब और समाजके सर्वमान्य पुरुषोंको चाहिये कि योग्यतम कुटुम्बियोंके हाथ समाज और कुटुम्बका सब ऐश्वर्य दे दें और उन योग्य अधिकारियोंको चाहिये कि समाजके प्रत्येक कार्य-सम्पादनके लिये स्वयं ही अग्रसर हों, वृद्धोंको निष्प्रपंच होकर आत्मानुसन्धान करने दें।

महापार्थिवेश्वर हिमालयकी महाशक्तिरूपा पुत्रीका श्रीशिवके साथ परिणय होनेसे ही विश्वका कल्याण हो सकता है। किसी प्रकारकी भी शक्ति क्यों न हो, जब-तक वह धर्मसे परिणीत—संयुक्त नहीं होती, तबतक कल्याणकारिणी नहीं होती। परंतु आसुरी शक्ति तो तपस्या चाहती ही नहीं, फिर उसे शिव या धर्म कैसे मिलेंगे? धर्मसम्बन्धके बिना शक्ति आसुरी होकर अवश्य ही संहारका हेतु बनेगी। प्रकृतिमाताकी यह प्रतिज्ञा है कि—

यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति।
यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ५।१२०)

अर्थात् संघर्षमें जो मुझे जीत लेगा, जो मेरे दर्पको चूर्ण कर देगा और जो मेरे समान या अधिक बलका होगा, वही मेरा पति होगा। यह स्पष्ट है कि रक्तबीज, शुम्भ, निशुम्भ आदि कोई भी दैत्य, दानव प्रकृति-विजेता नहीं हुए। किंतु सब प्रकृतिसे पराजित, प्रकृतिके अंश काम, क्रोध, लोभ, मोह, दर्प आदिसे पद-पदपर

भग्नमनोरथ होते रहे हैं। हाँ, गुणातीत प्रकृतिपार भगवान् शिव ही प्रकृतिको जीतते हैं। तभी तो प्रकृतिमाताने उन्हें ही अपना पति बनाया। यही क्यों, कन्दर्प-विजयी शिवकी प्राप्तिके लिये तो उन्होंने घोर तपस्या भी की।

आजका संसार शुम्भ-निशुम्भकी तरह विपरीत मार्गसे प्रकृतिपर विजय चाहता है। इसीलिये प्रकृति अनेक तरहसे उसका संहार कर रही है। पार्थिव, आप्य, तैजस—विविध तत्त्वोंका अन्वेषण; जल, स्थल, नभपर शासन करना; समुद्र-तलके जन्तुओंतकको शान्ति भंग करना, तरह-तरहके यन्त्रोंका आविष्कार और उनसे काम लेना ही आजका प्रकृतिजय है। इन्द्रिय, मन, बुद्धि और उनके विकारोंपर नियन्त्रण करनेका आज कोई भी मूल्य नहीं। प्रकृति भी कोयला, लोहा, तेल आदि साधारण-से-साधारण वस्तुओंको निमित्त बनाकर उन्हीं यन्त्रोंसे उनका संहार करा रही है।

आज शिव 'अनार्य' देवता बतलाये जा रहे हैं। शिवकी आराधना भूल जानेसे आज राष्ट्रका भी शिव (मंगल) नहीं हो रहा है—

जरत सकल सुर बृंद बिषम गरल जेहिं पान किय।
तेहि न भजसि मन मंद को कृपाल संकर सरिस॥

(रा०च०मा० ४।१ सो०)

शरीरका रक्षातन्त्र

(श्रीगणेशदत्तजी दूबे)

शरीरके जितने प्रवेशद्वार हैं, उनपर बड़े सतर्क प्रहरी तैनात हैं। जब हम भोजन करते हैं तो चबानेके साथ ही मुँहसे लार निकलकर उसमें मिल जाता है। लार प्रकृतिमें क्षारीय होता है। इस प्रकार जो भी जीवाणु या रोगाणु क्षारीय माध्यममें जीवित नहीं रह सकते हैं, वे मर जाते हैं। फिर भोजन गलेसे होता हुआ पेटमें जाता है। गलेपर टांसिल नामक एक अंग है, जो कि बड़ा ही संवेदनशील है और उसके पाससे गुजरते हुए भोजन और पानीके रोगाणु सोख लिये जाते हैं। पेटमें भोजनका सामना पेटमें उत्पन्न होनेवाले अम्लसे होता है। यह अम्ल लारके क्षारको समाप्त तो करता ही है तथा उन जीवाणुओं और रोगाणुओंको नष्ट कर देता है जो कि अम्लीय माध्यममें जिन्दा नहीं रह सकते हैं। इस प्रकार अब भोजन आँतमें पहुँचता है, जहाँसे शरीरके लिये आवश्यक रस आँतोंकी भित्तियोंके द्वारा सोख लिये जाते हैं और वह जीवाणु या रोगाणुमुक्त हो जाता है। इसी प्रकारकी व्यवस्था प्रकृतिने श्वासके लिये भी कर दी है। श्वास लेते समय नासिकाग्रपर स्थित बाल श्वासके साथ आती हुई धूल तथा अन्य वस्तुओंको रोक लेते हैं। नासिकासे लेकर फेफड़ोंतककी दीवालोंपरकी श्लेष्मा हवाके हानिकारक तत्त्वोंको सोखकर बाहर कफ आदिके रूपमें शरीरसे निकाल देती है। मल और मूत्रके द्वारा शरीरके अन्य दूषित तथा अनावश्यक पदार्थ निकाल दिये जाते हैं। इस प्रकार शरीरमें स्वयं इतनी विस्तृत व्यवस्था है कि व्याधि पास न फटक सके।

शरीरमें इतनी सुरक्षात्मक व्यवस्थाके बावजूद हमारी आदतें शरीरको व्याधिका मन्दिर बना देती हैं। हमारी आधुनिकताएँ इस प्रकार हमपर हावी हो गयी हैं कि रोगोंने भी अपनी प्रकृति बदल दी है और दवाओंके वे प्रतिरोधी हो गये हैं। हमारी श्वेत कणिकाओंकी फौजमें प्रहारक क्षमताका अभाव होता गया है। कारण है, हमारे आहार तथा विहारमें विचित्रताओंका आना। रात्रि ईश्वरने सोनेके लिये बनायी है, परंतु रात्रिमें देरतक जागना तथा देरतक सुबह सोना एक फैशन बन गया है। उनकी बात तो अलग है जो कि रोजी-रोटीकी विवशताओंके कारण रात्रिकी पालीमें कार्य करनेको मजबूर हैं, परंतु आधुनिकताके पाशसे ग्रसित व्यक्ति जब देर रात्रितक जागकर बिताते हैं तो वे अनजाने रोगको ही तो दावत देते हैं।

[प्रेषक—डॉ० श्रीकेशरीनारायणजी त्रिपाठी]

परमार्थ-साधनके आठ विघ्न

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

भगवत्प्राप्तिके साधकको या परमार्थ-पथके पथिकको एक-एक पैर सँभालकर रखना चाहिये। इस मार्गमें अनेकों विघ्न हैं। आज उनमेंसे आठ प्रधान विघ्नोंके सम्बन्धमें कुछ आलोचना करनी है—वे आठ ये हैं—आलस्य, विलासिता, प्रसिद्धि, मान-बड़ाई, गुरुपन, बाहरी दिखाव, पर-दोषचिन्तन और सांसारिक कार्योंकी अत्यन्त अधिकता।

आलस्य—आलसी मनुष्यका जीवन तमोमय रहता है। वह किसी भी कामको प्राय: पूरा नहीं कर पाता। आज-कल करते-करते ही उसके जीवनके दिन पूरे हो जाते हैं। वह परमार्थकी बातें सुनता-सुनाता है, उसे अच्छी भी लगती हैं, परन्तु आलस्य उसे साधनमें तत्पर नहीं होने देता। श्रद्धावान् पुरुष भी आलस्यके कारण उदेश्य-सिद्धितक नहीं पहुँच पाता। इसीलिये श्रद्धाके साथ 'तत्परता' की आवश्यकता भगवान्ने गीतामें बतलायी है। आलस्यसे तत्परताका विरोध है, आलस्य सदा यही भावना उत्पन्न करता रहता है कि 'क्या है, पीछे कर लेंगे।' जब कभी उसके मनमें कुछ करनेकी भावना होती है, तभी आलस्य प्रमाद, जम्हाई, तन्द्रा आदिके रूपमें आकर उसे घेर लेता है, अतएव आलस्यको साधन-मार्गका एक बहुत बड़ा शत्रु मानकर जिस किसी उपायसे भी उसका नाश करना चाहिये।

विलासिता—विलासी पुरुषको मौज-शौकके सामान जुटानेमें ही फुरसत नहीं मिलती, वह साधन कब करे? पहले सामान इकट्ठा करना, फिर उससे शरीरको सजाना, यही उसका प्रधान कार्य होता है। कभी साधु-महात्माका संग करता है तो उसकी क्षणभरको यह इच्छा होती है कि मैं भी भजन करूँ, परंतु विलासिता उसको ऐसा करने नहीं देती। भाँति-भाँतिके नये-नये फैशनके सामान संग्रह करना और उनका मूल्य चुकानेके लिये अन्याय और असत्यकी परवा न करते हुए धन कमानेके काममें लगे रहना—इन्हींमें उसका जीवन बीतता है। शौकीन मनुष्यको धनका अभाव तो प्राय: बना ही रहता है; क्योंकि वह आवश्यक-अनावश्यकका ध्यान छोड़कर जहाँ कहीं भी कोई शौककी बढ़िया चीज देखता है, उसीको खरीद लेता है या खरीदना चाहता है। न रुपयोंकी परवा करता है और न अन्य किसी प्रकारका परिणाम सोचता है। सुन्दर मकान, बढ़िया-बढ़िया बहुमूल्य महीन वस्त्र, सुन्दर भोजन, इत्र-फुलेल, कंघे, दर्पण, जूते, घड़ी, छड़ी, पाउडर आदिकी तो बात ही क्या है, खाने-पहनने, बिछाने, बैठने, चलने-फिरने, सूँघने-देखने और सुनने-सुनाने आदि सभी प्रकारके सामान उसे बढ़िया-से-बढ़िया और सुन्दर-से-सुन्दर चाहिये। वह रात-दिन इन्हींकी चिन्तामें लगा रहता है। वैराग्य तो उसके पास भी नहीं फटकने पाता। वह कभी-कभी भगवान्से प्रार्थना करता है कि 'हे भगवन्! मेरे मनमें आपको प्राप्त करनेकी इच्छा है, परंतु मेरे शौकके सामान सदा बने रहें, मुझे नये-नये विलास-द्रव्योंकी प्राप्ति होती रहे और मैं इसी प्रकार विलासितामें डूबा हुआ ही आपको भी पा लूँ।' कहना नहीं होगा कि यह प्रार्थना भी उसकी क्षणभरके लिये ही होती है। ऐसे लोगोंको करोड़पतिसे कंगाल होते देखा जाता है और अर्थ-कष्टके साथ ही आदतसे प्रतिकूल स्थितिमें रहनेको बाध्य होनेका एक महान् कष्ट उन्हें विशेषरूपसे भोगना पड़ता है। जो मनुष्य भगवत्प्राप्ति तो चाहता है परंतु वैराग्य नहीं चाहता और सादा जीवन बितानेमें संकोचका अनुभव करता है, वह भगवत्प्राप्तिके मार्गपर अग्रसर नहीं हो सकता। अत: विलासिताके भावको मनमें आते ही उसे तुरंत निकाल देना चाहिये। यह भाव तरह-तरहकी युक्तियाँ पेश करके पहले-पहल 'कर्तव्य' समझाकर आश्रय प्राप्त कर लेता है, फिर बढ़कर मनुष्यको तबाह कर डालता है, अतएव इससे विशेष सावधान रहना चाहिये। विलासी पुरुषोंका संग करना या

उनके आस-पास रहना भी विलासितामें फँसानेवाला है। इसलिये विलासिताको परम शत्रु समझ इसका सर्वथा नाश करके सभी बातोंमें सादगीका आचरण करना चाहिये। विलासितामें अनेक हानियाँ हैं, परंतु निम्नलिखित दस हानियाँ तो होती ही हैं, इस बातको याद रखना चाहिये।

१-धनका नाश,

२-आरोग्यताका नाश,

३-आयुका नाश,

४-सादगीके सुखका नाश,

५-देशके स्वार्थका नाश,

६-धर्मका नाश,

७-सत्यका नाश,

८-वैराग्यका नाश,

९-भक्तिका नाश,

१०-ज्ञानका नाश।

प्रसिद्धि—संसारमें ख्याति साधन-मार्गका एक बड़ा विघ्न है। इसीसे सन्तोंने भगवत्प्रेमको वैसे ही गुप्त रखनेकी आज्ञा दी है, जैसे भले घरकी स्त्री जारके अनुरागको छिपाकर रखती है। साधककी प्रसिद्धि होते ही चारों ओरसे लोग उसे घेर लेते हैं। साधनके लिये उसे समय मिलना कठिन हो जाता है। उसका अधिक समय सैकड़ों-हजारों आदमियोंसे बात-चीत करने और पत्र-व्यवहारमें बीतने लगता है। जीवनकी अन्तर्मुखी वृत्ति बहिर्मुखी बनने लगती है। होते-होते उसका जीवन सर्वथा बहिर्मुखी हो जाता है। वह बाहरके कामोंमें ही लग जाता है और क्रमशः गिरने लगता है। परंतु प्रसिद्धिमें प्रिय भाव उत्पन्न हो जानेके कारण उसे वह सदा बढ़ाना चाहता है और यों दिनों-दिन अधिकाधिक लोगोंसे परिचय प्राप्त कर लेता है। फिर उसका असली साधकका स्वरूप तो रहता नहीं, परन्तु प्रसिद्धि कायम रखनेके लिये वह दम्भ आरम्भ कर देता है और वैसे ही रात-दिन जलता और नये-नये ढोंग रचा करता है, जैसे निर्धन मनुष्य धनी कहानेपर अपने उस झूठे दिखाऊ धनीपनको कायम रखनेके लिये अन्दर-ही-अन्दर जलता और जाल रचता रहता है। उसका जीवन कपट, दुःख और सन्तापका घर बन जाता है। ऐसी अवस्थामें साधनका तो स्मरण ही नहीं रहता; अतएव इस अवस्थाकी प्राप्ति न हो, इससे पहले ही बढ़ती हुई प्रसिद्धिको रोकनेकी चेष्टा करनी चाहिये। यह बात याद रखनी चाहिये— 'जिनकी प्रसिद्धि नहीं हुई और भजन होता है, वे पूरे भाग्यवान् हैं। जितनी प्रसिद्धि है, उससे ज्यादा भजन होता है तो भी अधिक डर नहीं है। जितना भजन होता है उतनी ही प्रसिद्धि है तो गिरनेका भय है। जितना भजन होता है, उससे कहीं ज्यादा प्रसिद्धि हुई तो वह गिरने लगा और जहाँ कोई बिना भजनके ही भजनानन्दी कहलाता है, वहाँ तो उसका पतन हो ही चुका।'

मान-बड़ाई—यह बड़ी मीठी छुरी है या विषभरा सोनेका घड़ा है। देखनेमें बहुत ही मनोहर लगता है, परंतु साधन-जीवनको नष्ट करते इसे देर नहीं लगती। संसारके बहुत बड़े-बड़े पुरुषोंके बहुत बड़े-बड़े कार्य मान-बड़ाईके मोलपर बिक जाते हैं। असली फल उत्पन्न करनेके पहले ही वे सब मान-बड़ाईके प्रवाहमें बह जाते हैं। मानकी अपेक्षा भी बड़ाई अधिक प्रिय मालूम होती है। बड़ाई पानेके लिये मनुष्य मानका त्याग कर देता है, लोग प्रशंसा करें, इसके लिये मान छोड़कर सबसे नीचे बैठते और मानपत्र आदिका त्याग करते लोग देखे जाते हैं। बड़ाई मीठी लगी कि साधन-पथसे पतन हुआ। आगे चलकर तो उसके सभी काम बड़ाईके लिये ही होते हैं। जबतक साधनसे बड़ाई होती है तबतक वह साधकका भेष रखता है। जहाँ किसी कारणसे परमार्थ-साधनमें रहनेवाले मनुष्योंकी निन्दा होने लगती है, वहीं वह उसे छोड़कर जिस कार्यमें बड़ाई होती है, उसीमें लग जाता है; क्योंकि अब उसे बड़ाईसे ही काम है, भगवान्से नहीं। अतएव मान-बड़ाईकी इच्छाका सर्वथा त्याग करना चाहिये, परंतु सावधान! यह वासना बहुत ही छिपी रह जाती है, सहजमें इसके अस्तित्वका पता

नहीं लगता। मालूम होता है, हम बड़ाईके लिये काम नहीं कर रहे हैं, परन्तु यदि निन्दा जरा भी अप्रिय लगती है और बड़ाई सुनते ही मनमें सन्तोष-सा प्रतीत होता है या आनन्दकी एक लहर-सी उठकर होठोंपर हँसीकी रेखा-सी चमका देती है तो समझना चाहिये कि बड़ाईकी इच्छा अवश्य मनमें है। बहुत-से मनुष्य तो भोगोंतकका त्याग भी बड़ाई पानेके लिये ही करते हैं। यद्यपि न करनेवालोंकी अपेक्षा बड़ाईके लिये किया जानेवाला त्याग या धार्मिक सत्कार्य बहुत ही उत्तम है, परंतु परमार्थदृष्टिसे मान-बड़ाईकी इच्छा अत्यन्त हेय और निन्दनीय होनेके साथ ही साधनसे गिरानेवाली है।

गुरुभाव—साधन-अवस्थामें मनुष्यके लिये गुरुभावको प्राप्त हो जाना बहुत ही हानिकारक है। ऐसी अवस्थामें, जब वह स्वयं ही सिद्धावस्थाको प्राप्त नहीं होता, जब उसीका साधनपथ रुक जाता है, तब वह दूसरोंको तो कैसे पार पहुँचायेगा? ऐसे ही कच्चे गुरुओंके सम्बन्धमें यह कहा जाता है, जैसे अन्धा अन्धोंकी लकड़ी पकड़कर अपने सहित सबको गड्ढेमें डाल देता है, वैसी ही दशा इनकी होती है। परमार्थपथमें गुरु बननेका अधिकार उसीको है, जो सिद्धावस्थाको प्राप्त कर चुका हो। जो स्वयं लक्ष्यतक नहीं पहुँचा है, वह यदि दूसरोंके पहुँचानेका ठेका लेने जाता है तो उसका परिणाम प्रायः बुरा ही होता है। शिष्योंमेंसे कोई सेवा करता है तो उसपर उसका मोह हो जाता है। कोई प्रतिकूल होता है तो उसपर क्रोध आता है। सेवकके विरोधीसे द्वेष होता है। दलबन्दी हो जाती है। जीवन बहिर्मुख होकर भाँति-भाँतिके झंझटोंमें लग जाता है। साधन छूट जाता है। उपदेश और दीक्षा देना ही जीवनका व्यापार बन जाता है। राग-द्वेष बढ़ते रहते हैं और अन्तमें वह सर्वथा गिर जाता है। साधन-पथमें दूसरोंको साथी बनाना, पिछड़े हुओंको साथ लेना, मित्रभावसे परस्पर सहायता करना, या भूले हुओंको मार्ग बताना, साथमें प्रकाश या भोजन हो तो दूसरोंको भी उससे लाभ उठाने देना, मार्गके बीमारोंकी सेवा करना, अशक्तोंको शक्तिभर साहस, शक्ति और धैर्य प्रदान करना तो साधकका परम कर्तव्य है। परंतु गुरु बनकर उनसे सेवा कराना, पूजा प्राप्त करना, अपनेको ऊँचा मानकर उन्हें नीचा समझना, दीक्षा देना, सम्प्रदाय बनाना, अपने मतको आग्रहसे चलाना, दूसरोंकी निन्दा करना और बड़प्पन बघारना आदि बातें भूलकर भी नहीं करनी चाहिये।

बाहरी दिखाव—साधनमें 'दिखाव' की भावना बहुत बुरी है। वस्त्र, भोजन और आश्रम आदि बातोंमें मनुष्य पहले तो संयमके भावसे कार्य करता है, परंतु पीछे उसमें प्रायः 'दिखाव' का भाव आ जाता है। इसके अतिरिक्त, 'ऐसा सुन्दर आश्रम बने, जिसे देखते ही लोगोंका मन मोहित हो जाय, भोजनमें इतनी सादगी हो कि देखते ही लोग आकर्षित हो जायँ। वस्त्र इस ढंगसे पहने जायँ कि लोगोंके मन उनको देखकर खिंच जायँ'—ऐसे भावोंसे भी ये कार्य होते हैं। यद्यपि यह दिखावटी भाव सुन्दर और असुन्दर दोनों ही प्रकारके चाल-चलन और वेष-भूषामें ही रह सकते हैं। बढ़िया कपड़े पहननेवालेमें स्वाभाविकता हो सकती है और मोटा खद्दर या गेरुआ अथवा बिगाड़कर कपड़े पहननेवालेमें 'दिखाव' का भाव रह सकता है। इसका सम्बन्ध ऊपरकी क्रियासे नहीं है, मनसे है तथापि अधिकतर सुन्दर दिखानेकी भावना ही रहती है। लोकमें जो फैशन सुन्दर समझा जाता है, उसीका अनुकरण करनेकी चेष्टा प्रायः हुआ करती है। अन्दर सचाई होनेपर भी 'दिखाव' की चेष्टा साधकको गिरा ही देती है। अतएव इससे सदा बचना चाहिये।

पर-दोष-चिन्तन—यह भी साधन-मार्गका एक भारी विघ्न है। जो मनुष्य दूसरेके दोषोंका चिन्तन करता है; वह भगवान्‌का चिन्तन नहीं कर सकता। उसके चित्तमें सदा द्वेषाग्नि जला करती है। उसकी जहाँ नजर जाती है, वहीं उसे दोष दिखायी देते हैं। दोषदर्शी सर्वत्र

भगवान्‌को कैसे देखे? इसी कारण वह जहाँ-तहाँ हर किसीकी निन्दा कर बैठता है। परदोष-दर्शन और परनिन्दा साधन-पथके बहुत गहरे गड्ढे हैं। जो इनमें गिर पड़ता है, वह सहज ही नहीं उठ सकता। उसका सारा भजन-साधन छूट जाता है; अतएव साधकको अपने दोष देखने तथा अपनी सच्ची निन्दा करनी चाहिये। जगत्‌की ओरसे उदासीन रहना ही उसके लिये श्रेयस्कर है।

सांसारिक कार्योंकी अधिकता—मनुष्यको घरके, संसारके, आजीविकाके, यहाँतक कि परोपकारतकके कार्य उसी हदतक करने चाहिये, जिसमें विश्राम करने तथा दूसरी आवश्यक बातें सोचनेके लिये पर्याप्त समय मिल जाय। जो मनुष्य सुबहसे लेकर रातको सोनेतक काममें ही लगे रहते हैं, उनको जब विश्राम करनेकी ही फुरसत नहीं मिलती, तब घण्टे-दो घण्टे स्वाध्याय करने अथवा मन लगाकर भगवच्चिन्तन करनेको तो अवकाश मिलना सम्भव ही कैसे हो सकता है? उनका सारा दिन हाय-हाय करते बीतता है, मुश्किलसे नहाने-खानेको समय मिलता है। वे उन्हीं कामोंकी चिन्ता करते-करते सो जाते हैं, जिससे स्वप्नमें भी उन्हें वैसी ही सृष्टिमें विचरण करना पड़ता है। असलमें तो सांसारिक पदार्थोंके अधिक संग्रह करनेकी इच्छा ही दूषित है। दानके तथा परोपकारके लिये भी धन-संग्रह करनेवालोंकी मानसिक दयनीय दुर्दशाके दृश्य प्रत्यक्ष देखे जाते हैं, फिर भोगके लिये अर्थ-संचय करनेवालोंके दुःख भोगनेमें तो आश्चर्य ही क्या है, परंतु धन संचय किया भी जाय तो इतना काम तो कभी नहीं बढ़ाना चाहिये, जिसकी सँभाल और देखभाल करनेमें ही जीवनका अमूल्य समय रोज दो घड़ी स्वस्थचित्तसे भगवद्भजन किये बिना ही बीत जाय। जिन बेचारोंके पेट पूरे नहीं भरते, उनके लिये तो कदाचित् दिन-रात मजदूरीमें लगे रहना और अधिक-से-अधिक कार्यका विस्तार करना क्षम्य भी हो सकता है, परंतु जो सीधे या प्रकारान्तरसे धनकी प्राप्तिके लिये ही कार्योंको बढ़ाते हैं, वे तो मेरी तुच्छ बुद्धिमें भूल ही करते हैं। निष्कामभावसे करनेकी इच्छा रखनेवाले पुरुष भी जब अधिक कार्योंमें व्यस्त हो जाते हैं, तब प्रायः निष्कामभाव चला जाता है और कहीं-कहीं तो ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है, जिसमें बाध्य होकर सकामभावका आश्रय लेना पड़ता है; अतएव जहाँतक बने साधक पुरुषोंको सांसारिक कार्य उतने ही करने चाहिये, जितनेमें गृहस्थीका खर्च सादगीसे चल जाय, प्रतिदिन नियमित रूपसे भजन-साधनको समय मिल सके, चित्त न अशान्त हो और न निकम्मेपनके कारण प्रमाद या आलस्यको ही अवसर मिले। कर्तव्य-पालनकी तत्परता बनी रहे और मनुष्य-जीवनके मुख्य ध्येय 'भगवत्प्राप्ति' का कभी भूलकर भी विस्मरण न हो।

विघ्न और भी बहुतसे हैं, पर प्रधान-प्रधान विघ्नोंमें आठ बड़े प्रबल हैं। साधकको चाहिये कि वह दयामय सच्चिदानन्द भगवान् की कृपापर विश्वास करके और उसीका आश्रय ग्रहण करके इन विघ्नोंका नाश कर दे। प्रभु-कृपाके बलसे असम्भव भी सम्भव हो जाता है। मनुष्य प्रभु-कृपापर जितना ही विश्वास करता है, उतना ही वह प्रभुकी सुखमय गोदकी ओर आगे बढ़ता है।

गजानन-स्तुति

(डॉ० श्रीसत्यप्रकाशजी 'बृजेश किंकर')

जय भक्त शिरोमणि गण नायक श्रीराम नाम हियधारे हो।
करें रोम-रोम में रमण राम तुम उमा महेश दुलारे हो॥
प्रभु रिद्धि-सिद्धि दाता भक्ती, सब विघ्न विनाशन वारे हो।
मधु मोदक प्रिय मंगल दाता, तुम ज्ञान विवेक प्रदारे हो॥

हे विद्याबारिधि सिद्धि सदन, सुख सम्पति देने वारे हो।
हो अन्ध बधिर के दुःख टारक, संतति सौभाग्य सम्भारे हो॥
प्रभु दीन हीन अविवेकी के, तुम भाग्य कुभाग्य विदारे हो।
सुनि विरद आश हिय धारि यही, प्रभु सत्य दीन रखवारे हो॥

शिव और सती

(श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामायणी)

सिव सम को रघुपति ब्रत धारी। बिनु अघ तजी सती असि नारी॥

श्रीरामचरितमानसकी इस चौपाईमें ग्रन्थकार श्रीगोस्वामीजीने महर्षि याज्ञवल्क्यके प्रवचनके द्वारा भगवान् शिव और माता सतीदेवीकी असीम महिमा बड़े ही सुन्दर ढंगसे प्रतिपादित की है। प्रथम चरणमें ***'सिव सम को'*** और द्वितीय चरणमें ***'सती असि नारी'*** पदके द्वारा दम्पतीकी महिमाकी गम्भीरता पराकाष्ठाको पहुँचा दी गयी है। भगवान् शिवके लिये ***'रघुपति ब्रतधारी'*** विशेषण ही उनके व्रतकी महत्ताको प्रकट कर रहा है; क्योंकि संसारमें सब धर्मोंका सार, सब तत्त्वोंका निचोड़ भगवत्प्रेम ही निश्चय किया गया है। भगवान् परब्रह्ममें दृढ़ निष्ठाका हो जाना ही परम विशिष्ट धर्म है और भगवान् शिवने तो अपने अनुभवसे इसीको सार समझकर जगत्‌को निःसार निश्चित कर लिया था। जैसे—

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजनु जगत सब सपना॥

इसी प्रेम-प्रभावकी महिमासे सती-ऐसी नारीमें भी उनकी आसक्ति न थी। जिस समय त्रेतायुगमें कुम्भज ऋषिके आश्रमसे वह सतीके साथ कैलासको लौट रहे थे, उसी समय दण्डकारण्यमें सीताहरणके कारण पत्नीवियोगमें दुःखित मानव-लीला करते हुए श्रीरघुनाथजीका उन्हें दर्शन हुआ और उन्होंने ***'जय सच्चिदानंद जग पावन'*** और ***'सच्चिदानंद परधामा'*** कहकर उनको प्रणाम किया। इसपर सतीको यह सन्देह उत्पन्न हुआ कि नृपसुतको ***'सच्चिदानंद परधामा'*** कहकर सर्वज्ञ शिवने क्यों प्रणाम किया? भगवान् शिवने सतीको भगवत्-अवतारकी बात अनेक प्रकारसे समझायी, परंतु उन्हें बोध न हुआ—

लाग न उर उपदेसु जदपि कहेउ सिवँ बार बहु।
बोले बिहसि महेसु हरिमाया बलु जानि जियँ॥

शिवजीने अपने हृदयमें ध्यान धरकर देखा कि 'इसमें हरिमायाकी प्रेरणा हो रही है; क्योंकि जब ***'मोरेहु कहें न संसय जाहीं'*** तब प्रभुकी जो इच्छा है, उसीमें सतीको प्रेरित कर देना हमारा भी धर्म है।' इसलिये उन्होंने कहा—

जौं तुम्हरें मन अति संदेहू। तौ किन जाइ परीछा लेहू॥
तब लगि बैठ अहउँ बटछाहीं। जब लगि तुम्ह ऐहहु मोहि पाहीं॥

यद्यपि भगवान् शिवके विषयमें यह प्रमाण है कि ***'भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी'*** तथापि जिस भावीमें हरिकी इच्छा शामिल है, उसे हृदयमें विचारकर भगवान् शिव कदापि उसके मेटनेकी इच्छा नहीं करते, बल्कि वैसा ही होनेमें आप भी सहायक हो जाते हैं—

हरि इच्छा भावी बलवाना। हृदयँ बिचारत संभु सुजाना॥

—सच है, सुजान भक्तोंकी भक्तिका इसीसे परिचय मिलता है।

यही मर्म श्रीगुरु वसिष्ठजीके इस वाक्यमें भरा हुआ है—

सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ।

क्योंकि जब अगाध-हृदय श्रीभरतजीने कहा कि—

सो गोसाइँ बिधि गति जेहिं छेंकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी॥
बूझिअ मोहि उपाउ अब सो सब मोर अभागु॥

तब वसिष्ठजीने स्पष्ट कह दिया—

तात बात फुरि राम कृपाहीं। राम बिमुख सिधि सपनेहुँ नाहीं॥

वस्तुतः बात भी यही है, भगवान् शिव तथा श्रीवसिष्ठजीको भावीके मेटनेकी सामर्थ्य भी तो रामभक्तिके प्रतापसे ही मिली थी। नहीं तो—

कह मुनीस हिमवंत सुनु जो बिधि लिखा लिलार।
देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटनिहार॥

श्रीमहादेव अथवा मुनि वसिष्ठजी अपने देवपन या मुनिपनके बलसे विधि-अंकके मिटानेकी सामर्थ्य तो रखते नहीं थे। यह अघटित सामर्थ्य भगवान्‌की दयासे और भगवत्-भक्तिके प्रतापसे भक्तोंको ही हो सकती है। अतः उन भक्तोंका यह सिद्धान्त रहता है कि 'हम तो

तुम्हारी खुशीमें खुश हैं और कुछ नहीं चाहते'—

राजी हैं हम उसीमें जिसमें तेरी रजा है!

सतीको परीक्षा लेनेका आदेश करते समय भगवान् शिवने इतना चेता दिया था—***'करेहु सो जतन बिबेक बिचारी'*** परंतु सतीने परीक्षा लेनेके लिये श्रीसीताजीका ही वेष धारण किया, जिसमें शिवजीने अपनी स्वामिनी और माताकी दृढ़ निष्ठा कर रखी थी। अत:—

सिय बेषु सतीं जो कीन्ह तेहिं अपराध संकर परिहरीं।

क्योंकि उनकी यह निश्चित भावना थी कि—

जौं अब करउँ सती सन प्रीती। मिटइ भगति पथु होइ अनीती॥

बल्कि शिवजी सतीको सदाके लिये त्याग देनेका चिन्तन कर रहे थे, इससे उनके हृदयमें अत्यन्त सन्ताप हो उठा—

परम पुनीत न जाइ तजि किएँ प्रेम बड़ पापु।
प्रगटि न कहत महेसु कछु हृदयँ अधिक संतापु॥

परंतु भगवद्भक्तोंको भगवान्‌की शरण ही प्रत्येक सुख-दु:खकी अवस्थामें आधार रहती है और उन्हीं **'योगक्षेमं वहाम्यहम्'** रूप विरद पालनेवाले प्रभुसे प्रदान की हुई बुद्धिके द्वारा सदैव शरणागतोंकी रक्षा हुआ करती है; क्योंकि **'ददामि बुद्धियोगं तम्'** भी प्रभुकी ही प्रतिज्ञा है। अतएव जब भगवान् शंकरने ऐसे समयमें प्रतिपत्ति ली, जैसे—

तब संकर प्रभु पद सिरु नावा। सुमिरत रामु हृदयँ अस आवा॥
एहिं तन सतिहि भेट मोहि नाहीं।

—तब भगवान् भक्तवत्सलने उनकी बुद्धिमें प्रेरणा की कि सदाके लिये त्यागकी जरूरत नहीं है। केवल इसी जन्ममें सतीका त्याग करना ठीक है, जिसमें उन्होंने सीताका वेष धारण किया है। अतएव ऐसा ही संकल्प भगवान् शिवने किया। जिससे दोनों काम हो गये; न तो सदाके लिये सतीका त्याग करना पड़ा और न उस शरीरसे प्रीति ही रखी गयी।

समस्त भक्तजनोंको **(वैष्णवानां यथा शम्भुः)** भक्तशिरोमणि भगवान् शिवके इस रहस्यसे यह उपदेश मिलता है कि जब कोई धर्मसंकट आ पड़े तो सच्चे हृदयसे हरिस्मरण करनेसे ही उसके निर्वाहकी राह निकल आयेगी।

अतएव जब केवल एक जन्मके लिये सतीका त्याग हो गया, तब सतीको अपनी करनीपर अत्यन्त पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने भी उन्हीं परमप्रभु श्रीरघुनाथजीकी हृदयसे प्रतिपत्ति ली और कहा कि 'हे आरतिहरण! हे दीनदयाल!! मेरा यह शरीर शीघ्र छूट जाय, जिससे मैं दु:ख-सागरको पारकर पुन: भगवान् शिवजीको प्राप्त कर सकूँ'—

कहि न जाइ कछु हृदय गलानी। मन महुँ रामहि सुमिर सयानी॥
जौं प्रभु दीनदयालु कहावा। आरति हरन बेद जसु गावा॥
तौ मैं बिनय करउँ कर जोरी। छूटउ बेगि देह यह मोरी॥
जौं मोरें सिव चरन सनेहू। मन क्रम बचन सत्य ब्रतु एहू॥
तौ सबदरसी सुनिअ प्रभु करउ सो बेगि उपाइ।
होइ मरनु जेहिं बिनहिं श्रम दुसह बिपत्ति बिहाइ॥

भगवत्कृपासे योग लग गया और अपने पिता दक्षके यज्ञमें जाकर योगानलसे शरीरको त्यागकर सतीने हिमाचलके घर पार्वतीके रूपमें पुनर्जन्म धारणकर भगवान् शिवको पुन: पतिरूपमें प्राप्त कर लिया।

पनु करि रघुपति भगति देखाई। को सिव सम रामहि प्रिय भाई॥
अस पन तुम्ह बिनु करइ को आना। रामभगत समरथ भगवाना॥

—इस प्रकार भगवान् शिवने जो बिना अघके ही केवल सीताका वेष धारण करनेके अपराधपर सतीका त्याग कर दिया था, यह उनकी भक्तिकी पराकाष्ठा थी।

'बिनु अघ तजी सती असि नारी' इस पदमें 'अघ' शब्द आया है। अघ और अपराधमें महान् अन्तर है। अघ उस दुष्कर्मको कहते हैं, जो वेदादिद्वारा निषिद्ध होनेपर भी जान-बूझकर अपनी वासनानुसार किये जाते हैं। अत: वह क्षम्य कभी नहीं हो सकते, उनका फल अवश्यमेव भोगना पड़ता है, परंतु 'अपराध' चूकको कहते हैं, जो सदा क्षम्य होती है; क्योंकि वह किसी पापबुद्धि या कुवासनाके कारण न होकर भूलसे की

जाती है। सतीजीने जो सीताका वेष धारण किया था, उसमें कदापि कोई कुवासना न थी। उसका उद्देश्य तो केवल यही जाँच करनेका था कि श्रीरघुनाथजी सचमुच ही सच्चिदानन्द ब्रह्मके अवतार हैं अथवा राजपुत्र हैं। केवल भगवत्स्वरूपके बोधार्थ सीताका वेष धारण करना 'अघ' नहीं कहा जा सकता और नारीका त्याग केवल अघके ही कारण हो सकता है, परंतु केवल अपराध हो जानेपर, जो क्षम्य भी हो सकता है, भगवान् शिवने उसे क्षमा न कर उपासनामें विरोध पड़नेके भयसे त्याग दिया। भगवान् शिवकी इस रघुपतिव्रतनिष्ठाको धन्य है!

उपर्युक्त चौपाईमें कोई-कोई अर्थ करनेवाले 'बिनु अघ' पदको विशेषण मानकर 'अनघ शिवजी' ऐसा अर्थ करते हैं, परंतु सतीको यदि अघयुक्त माना जाय तो उसके त्यागसे श्रीशंकरजीमें रघुपतिव्रतनिष्ठाका महत्त्व ही नहीं रह जाता। फिर जिस मुख्य विषयके उद्घाटनके लिये इस चौपाईकी रचना की गयी है, उसका महत्त्व ही नष्ट हो जायगा। यदि कोई शंका करे कि सतीने शिवसे मिथ्या भाषण किया था, वह तो अघ था। इसका उत्तर यह है कि उसे तो शिवजीने भगवत्-मायाकी प्रेरणा समझकर उसपर कुछ ध्यान ही नहीं दिया था—

बहुरि राममायहि सिरु नावा। प्रेरि सतिहि जेहिं झूँठ कहावा॥

ग्रन्थमें भी सतीत्यागका कारण झूठ बोलना नहीं बल्कि सीताका वेष धारण करना ही लिखा गया है और उसे अघ न कहकर अपराध ही बतलाया गया है—

'सिय बेषु सतीं जो कीन्ह तेहिं अपराध संकर परिहरीं।'

इस प्रकार सर्वश्रेष्ठ और परम पुरुषार्थ जो भगवद्भक्ति है, उसमें श्रीशिवजीके समान कौन व्रतधारी हो सकता है? ***'सिव सम को'*** इस पदका अभिप्राय तो स्पष्ट हो गया। अब ***'सती असि नारी'*** पदके अभिप्रायकी आलोचना करनी है। सतीजी कैसी आदर्श नारी थीं, इसका प्रमाण उनके इसी एक कर्तव्यसे दिया जा सकता है कि जब शिवजीने अपनी क्षमाशीला, अनन्या सतीको, अपराध क्षम्य होनेपर भी, इतना कठिन दण्ड दिया कि उसे त्याग ही डाला तब सतीका जीवन महान् विपत्तिमें पड़ गया—

'पति परित्याग हृदयँ दुखु भारी।'

तथा—

नित नव सोचु सती उर भारा। कब जैहउँ दुख सागर पारा॥

सती बसहिं कैलास तब अधिक सोचु मन माहिं।
मरमु न कोऊ जान कछु जुग सम दिवस सिराहिं॥

तथापि उन्होंने अपने पतिव्रतधर्मकी पराकाष्ठाको प्रमाणितकर—

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परखिअहिं चारी॥

—को चरितार्थ कर दिया। इसी कारण आपको ऐसा पद प्राप्त हुआ कि—

पतिदेवता सुतीय महुँ मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न सकहिं कहि सहस सारदा सेष॥

सांसारिक स्त्रियाँ स्वार्थपरायणा होती हैं, यदि पतिने किसी उचित बातपर भी उन्हें रोका तो वे तत्काल मैकेकी राह लेती हैं और वहाँकी सहायतासे लड़ाई ठान देती हैं। बेचारे पतिको नाकों चने चबाने पड़ते हैं और अन्तमें अनुनय-विनय करनेपर मैकेसे वह लौटनेके लिये राजी होती हैं तथा पतिको सदा हुकूमतमें रखती हैं, परंतु पूजनीया माता सतीकी पतिनिष्ठाको तो देखिये कि अकारण त्यागे जानेपर भी—

जौं मोरें सिव चरन सनेहू। मन क्रम बचन सत्य ब्रतु एहू॥

—अन्तर्यामी भगवान्‌की प्रपत्तिमें इस प्रकारकी शर्त लगा रही हैं तथा पतिदेवकी आज्ञा प्राप्तकर जब दक्षयज्ञमें जाती हैं तो वहाँ अपने पतिदेवके अपमानको श्रवणकर पैत्रिक-सम्बन्धको तृणवत् समझ इस प्रकार त्याग कर देती हैं कि माता-पिताकी ममता तो क्या, पतिके प्रतिकूल होनेवाले पिताके शुक्रसे उत्पन्न अपने शरीरसे भी अपनी आत्माको अलग कर देती हैं। अनुकूल पतिमें भी ऐसा प्रेम विरली ही नारियोंमें पाया जाता है और इधर तो पतिदेवने रुष्ट होकर सतीसे सम्बन्ध ही विच्छेद कर डाला था। तथापि—

सिव अपमानु न जाइ सहि हृदयँ न होइ प्रबोध।
सकल सभहि हठि हटकि तब बोली बचन सक्रोध॥
जगदातमा महेसु पुरारी। जगत जनक सब के हितकारी॥
पिता मंदमति निंदत तेही। दच्छ सुक्र संभव यह देही॥
तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि चंद्रमौलि बृषकेतू॥
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। भयउ सकल मख हाहाकारा॥

धन्य है सतीकी सत्यनिष्ठाको! इसी कारण ***'सती असि नारी'*** पद दिया गया है।

इस संसारमें स्त्रियोंके उद्धारका सर्वश्रेष्ठ और सुलभ मार्ग केवल पातिव्रत्य-धर्म ही शास्त्रसम्मत है। ***'नारिधरमु पति देउ न दूजा'*** इसकी शिक्षा संसारभरकी स्त्रियोंको सतीसे लेनी चाहिये तथा मनुष्योंके उद्धारका सर्वश्रेष्ठ और परम सुलभ मार्ग केवल भगवद्भक्ति ही है, यह बात भी सर्वशास्त्रसम्मत तथा निर्विवाद है और पुरुषमात्रको ऐसे परम पुरुषार्थकी प्राप्तिके हेतु भगवान् शिवजीका अनुसरण करना चाहिये। प्रेमपथके अद्वितीय आचार्य भगवान् शंकरका अनुसरणकर अनायास मनुष्य संसार-सागरको पार कर सकता है।

इस प्रकार भगवान् शिव और माता सती अपनी निष्ठा और सदाचारके द्वारा समस्त जीवोंके उद्धारका मार्ग निश्चय करा रहे हैं तथा उसे अपने चरित्रद्वारा स्वयं दिखला रहे हैं। दम्पतीका युगल विग्रह जगत्मात्रके कल्याण और उपकारका हेतु है। भगवान् शिवका चरित्र जीवोंके उपदेशके लिये ही है, आप साक्षात् भगवद्गुणावतार हैं। आपकी गिनती जगत्के जीवोंमें कभी नहीं की जा सकती, आप ईश्वर-कोटिमें हैं और जीवोंके कल्याणार्थ आविर्भूत होते हैं। श्रीरामचरितमानसमें भी श्रीयुगल विग्रहका ऐश्वर्य—

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं।
विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं॥

तथा—

भव भव बिभव पराभव कारिनि। बिस्वबिमोहनि स्वबसबिहारिनि॥

—इत्यादि पदोंमें परिलक्षित है।

मानसग्रन्थकारको लीलाप्रकरणमें माता सती और कैकेयीके सम्बन्धमें श्रीरघुनाथजीके विपरीत आचरण करनेके कारण बहुत कुछ बुरा-भला कह देना पड़ा है। जैसे—

सती कीन्ह चह तहँहुँ दुराऊ। देखहु नारि सुभाव प्रभाऊ॥

तथा कैकेयीके निमित्त—

बर मागत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुहँ परेउ न कीरा॥

परंतु इन सत्पात्रोंके गोप्य ऐश्वर्यके जाननेवाले श्रीगोसाईंजी अवसर पाकर महर्षि याज्ञवल्क्यके मुखसे 'बिनु अघ' सतीके लिये तथा उन्हींके शिष्य महर्षि भरद्वाजके मुखसे—

'तात कैकइहि दोसु नहिं गई गिरा मति धूति॥'

—कैकेयीकी निर्दोषताको सूचित कर दिया है।

शिव और सतीकी महिमाको इदमित्थम् कौन कह सकता है? इनका नाम ही 'कल्याण' और 'सत्स्वरूपा' है। ऐसे भगवान् शिव और सती माताकी जय हो!

शिवरूप-माधुरी

(श्रीशरदजी अग्रवाल, एम०ए०)

शिव के माथ विराजे चन्दा
हाथ त्रिशूल जटा में गंगा।
वामभाग में गौरा राजत
बीच में बालक है एकदन्ता॥ १॥
नाग गले में माथ त्रिपुण्डा
कानन कुण्डल दृढ़ भुजदण्डा।
सिंगी डमरु संग हैं सारे
तन की शोभा घोर प्रचण्डा॥ २॥
तन पर कैसे भस्म सुशोभन
हिम पर जैसे मेघ बने घन।
निर्मल नयन करें भयमोचन
तीनों ताप हरें तिरलोचन॥ ३॥
कटि बाघम्बर शोभा पाये
उरकी माला मन महकाये।
हिरण्य केशराशि मन भाये
शिवकी शोभा वरनि न जाये॥ ४॥

साधकोंके प्रति—

[किस ओर?]

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

बार-बार अपनेसे पूछना चाहिये—मेरा चित्त किस ओर जा रहा है? वृत्तियाँ दो प्रकारकी हैं—गौण और मुख्य। हमलोगोंकी मुख्य वृत्ति निरन्तर संसारके विषयों और भोगोंकी ओर प्रवाहित हो रही है। सारी इन्द्रियाँ और सारी वृत्तियाँ स्वाभाविक ही पतनकी ओर भागी जा रही हैं। गौण वृत्तिके अनुसार बाहरी मनसे हम थोड़ा-सा (वह भी संसारमें 'साधु' कहलानेकी इच्छासे और मान-सम्मान पानेकी लालसासे) लोग-दिखाऊ भजन-पूजन करते हैं। ऐसे भजनको भजन कहना उसका उपहास करना है। हाँ, न होनेसे तो ऐसा भजन भी उत्तम ही है। हमारी मुख्य वृत्ति सदैव सांसारिक विषयोंके सेवनमें इस प्रकार लगी रहती है, मानो उसका वही स्वरूप हो। जब संसारके स्वार्थपूर्ण कामसे कुछ अवकाश मिला तो थोड़ा-सा भजन कर लिया। इस प्रकार संसार हमें एक ओर खींच रहा है और भजन दूसरी ओर। हमने स्वयं भी तो संसारका ही साथ दे रखा है। इसीलिये उसीकी विजय होती है और भजन दब जाता है। भगवान्‌की तो आज्ञा है कि सब समय मेरा स्मरण करते हुए ही युद्ध करो। (गीता ८।७) जब युद्ध-जैसे विकट स्थलमें जहाँ बाणोंके लगने और जीत-हार होनेका भय बना रहनेपर भी भगवान्‌का निरन्तर स्मरण बना रह सकता है, तब हमलोग इस संसार-समरमें क्यों न उन 'एक' का ही बराबर स्मरण करते हुए युद्ध (कर्म) करें।

तो फिर कारण क्या है कि संसारके विषय-भोगोंका इतना अधिक स्मरण होता है और वे हमारे इतने प्रिय और निकटस्थ हो गये हैं, मानो उनसे हमारा स्वाभाविक या जन्मजात सम्बन्ध हो? कारण यह है कि हम स्वयं भजनके महत्त्वको न समझकर भोगोमें ही चरम सुख मान बैठे हैं। प्रेम तो दूर रहा, भजनमें हमारी आदर-बुद्धि भी नहीं है। विषयोंके लिये हम भजनको त्याग देते हैं। शरीरमें हमारी इतनी प्रगाढ़ प्रीति है कि चलते-फिरते स्वभावतः ही हम इसकी रक्षा करनेमें तत्पर रहते हैं। जो वस्तु जिसे प्यारी होती है, अच्छी लगती है, उसकी स्मृति उसे स्वभावतः ही बनी रहती है। यदि मुख्य वृत्तिसे एकान्तमें कुछ समयतक निरन्तर भजन होता रहे तो यह सर्वथा सम्भव है कि आगे चलकर चित्त एक क्षणके लिये भी वहाँसे विचलित न हो। फिर तो पलभरके लिये भी भजनका विस्मरण नहीं हो सकता। गोपियोंकी तो यही दृढ़ स्थिति थी—

चलत-चितवत, दिवस जागत, सुपन सोवत रात।
हृदय ते वह स्याम मूरति छिन न इत-उत जात॥

जागनेका क्या कहना, स्वप्नमें भी गोपियोंको श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु दीखती ही न थी। उनके संस्कार इतने श्रीकृष्णमय हो गये; मन, प्राण, चित्त और शरीर इतना अधिक श्रीकृष्णके रंगमें रँग गये कि उनके लिये श्रीकृष्णके अतिरिक्त कहीं कुछ रहा ही नहीं। यही अन्तर्मुखी—भगवन्मुखी वृत्ति है। जब हमारी सारी वृत्तियाँ अवगुणोंसे हटकर भगवान्‌की ओर स्वभावतः प्रवाहित होने लगें—नित्य-निरन्तर जाने लगें, तब समझना चाहिये कि हम भजनके पथपर हैं और इस प्रकार जो भजन होता है, वही सच्चा भजन है।

भजनमें चित्त ही मुख्य है। इस बातपर भगवान्‌ने बार-बार जोर दिया है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।

(गीता ९।२२)

चित्त भगवान्‌में लगे, वह परमात्मामें एकाकार हो जाय, ऐसी चेष्टा बराबर होती रहनी चाहिये। इसीका नाम 'अभ्यास' है। दूसरे जो चित्त विषयोंमें रमा रहता है, उसे वहाँसे बार-बार हटाते रहना ही 'वैराग्य' है। भगवान्‌में चित्त लगाना असम्भव नहीं; आवश्यकता है अभ्यास और वैराग्यकी।

चित्तकी वृत्तियोंके प्रवाहको, जो निरन्तर संसारकी ओर जा रहा है, वहाँसे हटाकर परमात्मामें लगाते रहना चाहिये। जहाँ मन परमात्मामें लगा कि फिर वहाँसे हटना

नहीं चाहेगा; क्योंकि यह तो परम आनन्द एवं परम शान्तिकी खोजमें है और ईश्वरमें लगते ही उसे वह चिर अभिवांछित शान्ति और आनन्द मिलने लगता है। फिर मनका ऐसा स्वभाव बन जाता है कि वह भगवान्‌को छोड़कर एक क्षणके लिये भी कहीं नहीं जाता। उसका भटकना सदाके लिये बन्द हो जाता है। यही चित्तकी स्व-स्वरूपमें स्थिति है।

पर संसारसे मन हटे कैसे? यह तो बुरी तरह इससे चिपटा हुआ है। इसका एक ही उपाय है, जिसे भगवान्‌ने गीतामें बतलाया है—अनित्य एवं सुखरहित संसारके सच्चे रूप जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि आदि दुःखोंके चित्र उसे बार-बार दिखलाये जायँ। संसारके इन दारुण चित्रोंको देखकर चित्त सहज ही उधरसे मुँह मोड़ लेगा और स्वतः परमात्माका अनुसंधान करने लगेगा; क्योंकि वास्तवमें वह संसारको केवल इसीलिये अपनाये हुए है कि उसमें उसे सुख भास रहा है। जब वह आँख पसारकर देख लेगा कि यहाँ केवल जलन-ही-जलन है तो फिर संसारके सुखोंका नाम ही न लेगा। जहाँसे मनको हटाना है, वहाँका दुःख और जहाँ लगाना है, वहाँका आनन्द उसे बार-बार बताया जाय। हमारे मनमें कुछ ऐसे संस्कार निश्चित हो गये हैं, जिनके कारण संसारके सुखोंमें ही हमारी समीचीन बुद्धि दृढ़ हो गयी है। मनने संसारके विषयोंमें तदाकारता स्थापित कर ली है, अतः वह उन्हें शीघ्र छोड़ना नहीं चाहता। मनुष्य जानता है कि संसारकी सभी वस्तुएँ विनाशशील हैं, अतः वे वियोगशील एवं दुःखदायी हैं; पर फिर भी संसारमें उसकी इतनी आसक्ति है कि एक क्षणके वियोगमें भी उसके प्राण निकलने लगते हैं और वह विषय-सुखोंके लिये हाय-हाय करने लगता है। उसे 'विष-भक्षण' की चाट-सी लग गयी है। वह बराबर ऐसा ही काम करता है, जिससे उसके दुःख बढ़ते रहते हैं और वह भवजालमें अधिकाधिक उलझता जाता है। भगवान्‌ने तो डंकेकी चोटपर कहा है—

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।

(गीता ९। ३३)

'इस अस्थायी और दुःखरूप संसारमें आकर मेरा भजन करो।' जो वस्तु स्वयं अनित्य है, उससे नित्य सुखकी आशा करना निरी मूर्खता है। यहाँ तो बस दुःख-ही-दुःख है—जन्ममें दुःख, मृत्युमें दुःख, जरामें दुःख, व्याधिमें दुःख, धनमें दुःख और मान-सम्मानमें दुःख। इस पानीके बुलबुलेपर क्या मरना? इस मृगतृष्णाके पीछे क्यों जान देना? संसारमें कोई भी वस्तु ऐसी नहीं, जो नाशवान् न हो। फिर बार-बार जन्म लेना, दुःख सहना और मरना, फिर जन्म लेना, दुःख सहना और मरना—क्या इसी चक्करमें रहना हमें प्रिय है?

संसारसे हटते ही मन मनमोहनसे जा मिलता है। यही इसका स्वभाव है। भगवान् तो समग्र सौन्दर्य, माधुर्य, ऐश्वर्य, लावण्य, श्री, ज्ञान, वैराग्य आदिके अनन्त भण्डार हैं। भगवान्‌में सारे सुख और सद्गुण तथा जगत्‌में सभी कुछ दुःख और दुर्गुणरूप हैं—ऐसी चेतना हो जानेपर मनको भगवान्‌में लगानेमें जोर नहीं देना पड़ता। उसे तो बस सुख चाहिये—संसारमें मिले या भगवान्‌में। जब वह जान लेगा कि संसारमें सुख है ही नहीं, दुःख-ही-दुःख है तो सहज ही भगवान्‌की ओर दौड़ेगा। पर यह केवल पाँच-सात मिनटके अभ्याससे नहीं होगा। इसके लिये सतत प्रयत्नशील होना पड़ेगा। संत-महात्माओंके चरित्र देखें और उनके साथ राजा-महाराजाओंके जीवनकी तुलना करें। पता नहीं, कितने राजे-महाराजे पृथ्वीपर पैदा हुए और मिट्टीमें मिल गये, पर आज हम उनका नामतक नहीं जानते और वे साधु-महात्मा, जिनके पास कौपीनके अतिरिक्त कुछ भी न था, संसारमें अपनी दिव्य छटा छिटकाकर चले गये और आज भी संसार उनके प्रकाशसे प्रकाशित है।

वह एक क्षण भी, जिसमें हमारा चित्त संसारकी ओरसे हटकर—उसे सर्वथा भुलाकर हरिमें लग जाता है, कितना दिव्य, आनन्दमय, शान्तिमय, प्रेममय और सुखमय हो जाता है! यदि हम सदाके लिये संसारको भूलकर भगवान्‌में रम जायँ तो फिर आनन्दका क्या कहना?

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८। १४)

परमानन्दस्वरूप प्रभुके स्मरणमें निमग्न रहना ही आनन्दका एकमात्र साधन है।

इस प्रकार मनकी मुख्य वृत्ति भगवान्‌में नित्य-निरन्तर स्वभावतः प्रवाहित होने लगेगी। एक ओर भगवान् हैं और दूसरी ओर विषय। जहाँ एकके लिये दूसरेको छोड़नेकी बात आती है, वहाँ यह दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिये कि चाहे जो कुछ भी हो जाय—संसार चाहे धूलमें मिल जाय, हमारी सांसारिक स्थिति कुछ भी हो जाय, आकाश फट जाय, पृथ्वी धँस जाय, समुद्र उमड़कर हमें ढक ले, पर हम भगवान्‌को नहीं छोड़ेंगे। भगवान्‌का एक क्षणका भी विस्मरण प्राणोंको खलने लगे। सब कुछ छूट जाय, पर भगवान् न छूटें। देहके खण्ड-खण्ड हो जायँ, पर हरिको नहीं छोड़ेंगे। जब भगवान्‌को पा लिया, तब फिर पाना ही क्या रह गया?

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

(गीता ६। २२)

जिसमें जिसका विश्वास होता है, वह उसकी रक्षा करता है। यदि मुख्य वृत्ति भजनमें लगी रहे तो वह भजन ही मूर्तिमान् होकर हमारी रक्षा करता है। भजनसे बढ़कर कोई बात है ही नहीं—यह दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिये। भगवान् ही तो नाना रूपोंमें हमारे सामने आये हुए हैं। महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव कहते थे कि 'नाम' के रूपमें भगवान्‌का अवतार हुआ है—ऐसा विश्वास दृढ़ हो जानेपर नाम-जप कितनी दिव्य साधना है! ऐसी साधनासे ही हमारा भजनमें आदर और प्रेम बढ़ता है। मन तो सदा ही प्रभुके चरणोंके स्मरण-ध्यानमें डूबा रहे, वहाँसे हटे ही नहीं। ऐसे साधकके लिये भगवान्‌की प्रतिज्ञा है—

ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम्।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे॥
मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शनाः।
वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा॥
साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्।
मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥

(श्रीमद्भा०९। ४। ६५-६६,६८)

'जो स्त्री-पुत्र, धन-प्राण आदिका मोह छोड़कर मेरी शरणमें आते हैं, उन्हें मैं कैसे छोड़ सकूँगा? साधुलोग मुझे अपनी भक्तिके द्वारा उसी प्रकार वशीभूत कर लेते हैं, जिस तरह कुलागंना अपने पतिको। साधु मेरे हृदय हैं और मैं साधुओंका हृदय हूँ, वे मेरे अतिरिक्त अन्य किसीको नहीं जानते और मैं उनके सिवा अन्य किसीको नहीं जानता।'

इस प्रकार निरन्तर स्मरणद्वारा प्रेमाभक्ति प्राप्त होनेपर तो सब कुछ भजन ही हो जाता है। उस समय चित्तकी यह धारणा हो जाती है कि भगवान् ही हमारे एकमात्र परम धन, परम गति और परम शरण हैं। वे ही हमारे परम आश्रय और परम सहायक हैं। वे ही हमारे एकमात्र 'परम प्रियतम' हैं। उनके अतिरिक्त कोई है ही नहीं। अब उनके सिवा स्मरण तो हो ही किसका?

इसलिये बार-बार वृत्तियोंपर सतर्क दृष्टि रखते हुए अपने हृदयसे पूछता रहे—'किस ओर?'

नटराज शंकर

(श्रीपृथ्वीसिंहजी चौहान 'प्रेमी')

अमित उमंगनि सों नाचैं शिव शृंगनि पै,
घमकैं हुलास तैं कैलास घमकत है।
भाल बाल इन्दुहू तैं झरि कै सुधा के बिन्दु,
छहरि बिभूरि भरै ढंग थिरकत हैं॥
डम डम डमरू डमाक डमकत कर,
उर पै बिसाल मुंड-माल लरकत है।
गंग छिरकत, अंग-अंग थिरकत,
नील गलमें गिरीसके भुजंग सरकत है॥

काशीके कुछ शिवलिंग

(श्रद्धेय पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

काशी तीनों लोकोंसे न्यारी मानी जाती है। यह पृथिवीपर स्थित होते हुए भी पृथिवीसे सम्बद्ध नहीं है और अध:स्थित होनेपर भी यह स्वर्ग आदि लोकोंसे उच्चतर है (काशीखण्ड १। २)। यहाँ जैसे चारों धाम, सातों पुरियाँ, सभी देवता और सभी तीर्थ निवास करते हैं, वैसे सभी लिंग भी यहाँ निवास करते हैं। अत: काशीके लिंगोंका विशद वर्णन तो सम्भव नहीं है, तथापि यहाँ कुछ लिंगोंका परिचय दिया जा रहा है।

काशी यात्राओंकी नगरी है। वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष आदि अनेक यात्राएँ की जाती हैं। इनमें नित्य-यात्रा बहुत ही आवश्यक मानी जाती है—

दृश्यो विश्वेश्वरो नित्यं स्नातव्या मणिकर्णिका।

(काशीखण्ड १००। १०५)

अत: विश्वेश्वर-लिंगसे यह परिचय प्रारम्भ किया जाता है।

विश्वेश्वर-लिंग (विश्वनाथजी)

शास्त्रोंमें बताया गया है कि जो मणिकर्णिका-तीर्थमें स्नानकर विश्वनाथजीका दर्शन करता है, वह शिवरूप हो जाता है, फिर उसका जन्म नहीं होता—

स्नात्वा मुमुक्षुर्मणिकर्णिकायां
मृडानि गङ्गाहृदये त्वदास्ये।
विश्वेश्वरं पश्यति योऽपि कोऽपि
शिवत्वमायाति पुनर्न जन्म॥

(सनत्कुमारसंहिता)

काशीखण्डमें तो यहाँतक कहा गया है कि जीवनभर समस्त शिवलिंगोंकी पूजासे जो फल मिलता है, वह केवल एक बार विश्वेश्वर-लिंगके पूजनसे प्राप्त हो जाता है—

सर्वलिंगार्चनात् पुण्यं यावज्जन्म यदर्ज्यते।
सकृद् विश्वेशमभ्यर्च्य श्रद्धया तदवाप्यते॥

(काशीखण्ड ९६। ३०)

भगवान् विश्वनाथने स्वयं कहा है कि 'भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक और जनलोकमें कहींपर विश्वेश्वर-लिंगके समान कोई लिंग नहीं है (का०खं० ९९। ४९)। यद्यपि मैं सम्पूर्ण लिंगोंमें वास करता हूँ, किंतु विश्वेश्वर-लिंग मेरी सबसे उत्कृष्ट मूर्ति है (का०खं० ९९। २०)। इस विश्वेश्वर-लिंगके दर्शनके लिये सभी स्वयम्भू और स्थापित लिंग आते रहते हैं (का०खं० ९९। १९)। विश्वेश्वर-लिंगके स्मरणमात्रसे जन्मभरके पापोंका नाश हो जाता है (का०खं० ९९। २२)।'

इस तरह भगवान् शंकरने विश्वेश्वर-लिंगकी भूरि-भूरि महिमा बताकर पार्वतीजीके साथ स्वयं इस लिंगकी पूजा की और वे इसीमें लीन हो गये (का०खं० ९९। ६२)।

काशीकी नित्य-यात्रामें और चार लिंग हैं—(१) महेश्वर-लिंग (ज्ञानवापीके पश्चिम-दक्षिणकोण), (२) नन्दिकेश्वर-लिंग (यह लिंग गुप्त हो गया है), (३) तारकेश्वर-लिंग—तारालोकसे यह तारकेश्वर-लिंग ज्योतीरूपमें आकर ज्ञानवापीमें विराजमान है। इस लिंगके पूजनसे तारक-ज्ञानकी प्राप्ति होती है (का०ख० ६९। ५३-५४) तथा (४) महाकालेश्वर-लिंग (ज्ञानवापीके दक्षिण-पूर्वकोणपर)।

विश्वनाथ-अन्तर्गृहीमें आये लिंग

अन्तर्गृहीकी यात्रा यथाशक्ति प्रतिदिन की जाती है। इस यात्रामें निम्नलिखित लिंगोंकी पूजा होती है। काशी-खण्डके सौवें अध्यायमें अन्तर्गृहीका विधान है।

१-मणिकर्णिकेश्वर—(यह लिंग गोमठ महल्लेके अभयाश्रममें है। मकान-नम्बर सी०के० ८। १२)। मर्णिकर्णिकेश्वरके दर्शनसे गर्भकी यन्त्रणा मिट जाती है। काशीखण्डसे पता चलता है कि भगवान् शंकरने स्वयं अन्तर्गृहके पूर्वद्वारपर इस लिंगकी स्थापना की थी।

२-कम्बलेश्वर—(कम्बलाश्वतरेश्वर) (गोमठ म०नं० सी०के० ८। १४)।

३-वासुकीश्वर—(सिन्धियाघाट, संकटाजीके दक्षिण म०नं० सी०के० ७। १५५)।

४-पर्वतेश्वर—(सिन्धियाघाट, म०नं० सी०के० ७। १५६)।

५-जरासन्ध्येश्वर—(मीरघाट गुप्त स्थानकी पूजा, म०नं० डी० ३। ७९)।

६-सोमेश्वर—(मानमन्दिर, म०नं० डी० १६। ३४)।

७-दालभ्येश्वर—(मान-मन्दिर)।

८-शूलटंकेश्वर—(दशाश्वमेध-प्रयागघाटपर)।

९-वराहेश्वर—(दशाश्वमेध, म०नं० डी० १७।१११)।

१०-ब्रह्मेश्वर—(बालमुकुन्दका चौहट्टा, बंगाली टोला, म०नं० डी० ३३।६६-६७)।

११-अगस्तीश्वर—(अगस्तकुण्डा, म०नं० डी० ३६।११)।

१२-कश्यपेश्वर—(जंगमवाड़ी, म०नं० डी० ३५।७७)।

१३-हरिकेशेश्वर—(जंगमवाड़ी, म०नं० डी० ३५।२७३ के दक्षिण)।

१४-वैद्यनाथेश्वर—(कोदई चौकी, म०नं० डी० ५०।२०)।

१५-ध्रुवेश्वर—कोदई चौकी, सनातन-धर्म-विद्यालयके कोनेमें।

१६-गोकर्णेश्वर—(कोदई चौकी, दयलूकी गलीमें म०नं० डी० ५०।३४ ए के दक्षिण)।

१७-हाटकेश्वर—(हड़हासराय, म०नं० सी०के० ४३।१८९)।

१८-अस्थिक्षेपतड़ागेश्वर—(बेनियाबाग, म०नं० सी०के० ४८।४५)।

१९-कीकसेश्वर—(हड़हा महल्ला, म०नं० सी०के० ४८।४५)।

२०-भारभूतेश्वर—(राजा दरवाजा, म०नं० सी०के० ५४।४४)।

२१-चित्रगुप्तेश्वर—(मच्छरहट्टा फाटक, म०नं० ५७।७७)।

२२-पशुपतीश्वर—(पशुपतीश्वर मुहल्ला, म०नं० सी०के० १३।६६)।

मणिकर्णिकाके पास पाशुपत तीर्थ है। इस तीर्थमें भगवान् शंकरने ब्रह्मा आदि देवताओं एवं ऋषियोंको पशुओं (जीवों)-के पाश हरनेवाले पाशुपत योगका उपदेश दिया था। इसके बाद लिंगरूप धारणकर स्वयं विराजित हो गये हैं (का०खं० ६०।६—८)।

२३-पितामहेश्वर—(शीतला गली, म०नं० सी०के० ७।९२)।

२४-कलशेश्वर—(शीतला गलीके आगे, म०नं० ७।१०६)।

२५-चन्द्रेश्वर—(सिद्धेश्वरी मन्दिरके अन्दर, म०नं० सी०के० ७।१२४)।

२६-वीरेश्वर—(म०नं० सी० ७।१५८)।

वीरेश्वर-लिंगकी महिमा अद्भुत है। वाराणसीमें अमित्रजित नामक एक राजा हो गये हैं। वे विष्णुके परम भक्त थे। उनकी पत्नी मलयगन्धिनी भी उन्हींकी तरह महान् भक्त थीं। पतिकी आज्ञा प्राप्तकर उन्होंने योग्य पुत्रके लिये तृतीया-व्रतका अनुष्ठान किया। भवानीकी कृपासे उन्हें वीरेश्वर नामक पुत्रकी प्राप्ति हुई। मूल नक्षत्रमें उत्पन्न होनेके कारण माताने पुत्रको विकटादेवीके चरणोंमें सौंप दिया। विकटादेवीने उस बच्चेको ब्राह्मी, वैष्णवी आदि मातृगणोंका आशीर्वाद दिलाकर बहुत ही योग्य बना दिया। १६ वर्षकी आयुमें माताओंने बालकको काशीके पंचमुद्रा नामक पीठपर पहुँचा दिया।

काशी पहुँचकर वीरेश्वरने घोर तपस्या की। भगवान् शंकर वीरेश्वरके सामने लिंग-रूपसे प्रकट हुए और उससे वरदान माँगनेको कहा। जनकल्याणके लिये वीरेश्वरने वरदानमें माँगा कि आप संसारके तापोंके नाशके लिये यहाँ लिंगरूपसे सदा विराजमान रहें और मन्त्र-जप आदि साधनोंके बिना ही जनताको अभीष्ट प्रदान करें—

अस्मिँल्लिङ्गे स्थितः शम्भो कुरु भक्तसमीहितम्।
विना मुद्रादिकरणं मन्त्रेणापि विना विभो॥

(का०खं० ८३।५०)

२७-विद्येश्वर—(नीमवाली ब्रह्मपुरी, म०नं० सी०के०ए० २।४१)

२८-अग्नीश्वर—(पटनी टोला, म०नं० सी०के० १।२१)।

२९-नागेश्वर—(भोंसला घाट, म०नं० सी०के० २।१)।

३०-हरिश्चन्द्रेश्वर—(संकटाघाट, म०नं० सी०के० ७।१६६)।

हरिश्चन्द्र-तीर्थमें पितरोंके तर्पण करनेसे उसके पूर्व-पुरुष १०० वर्षके लिये तृप्त हो जाते हैं और वाञ्छित फल प्रदान करते हैं। जो श्रद्धापूर्वक हरिश्चन्द्र-तीर्थमें स्नान करके हरिश्चन्द्रेश्वरको प्रणाम करता है,

वह सत्यसे च्युत नहीं होता (का०खं० ६१।७५—७८)।

३१-वसिष्ठेश्वर—(सिन्धियाघाट, म०नं० सी०के० ७।१६१)।

३२-वामदेवेश्वर—(सिन्धियाघाट, म०नं० सी०के० ७।१६१)।

३३-करुणेश्वर-(लाहौरी टोला, म०न० सी०के० ३४।१०)।

३४-त्रिसंधीश्वर—(लाहौरी टोला, म०नं० सी०के० ३४।१०)।

३५-धर्मेश्वर—(धर्मकूपके पास, म०नं० डी० २।२१)।

भगवान् शंकरने पार्वतीजीसे बताया है कि धर्मेश्वर-लिंगके स्मरण, दर्शन, स्पर्श और पूजनसे असीम कल्याण हो जाता है (का०खं० ७८।४३—४५)। यहींपर यमराजने समाधि लगाकर 'दण्डाधिकारी' पदको प्राप्त किया था। भगवान् विश्वनाथने धर्मराजको वरदान देते हुए कहा कि—'धर्मराज! तुमने काशीमें इस धर्मेश्वर-लिंगकी आराधना की है, अत: इस लिंगके दर्शन, स्पर्श और पूजनसे थोड़े ही समयमें सिद्धि प्राप्त होगी (का०खं० ७८।४६)। यदि हजारों पाप करनेवाले भी इस धर्मेश्वर-लिंगका दर्शन कर लें तो उन्हें नरकका क्लेश नहीं भोगना पड़ता (का०खं० ७८।४८)। कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमी तिथिमें व्रत करके रात्रि-जागरण कर लिया जाय तो मोक्ष प्राप्त होता है (का०खं० ७८।५५)।

३६-चतुर्वक्त्रेश्वर—(शकरकन्द गली, म०नं० डी० ७।१९ में)।

३७-ब्राह्मीश्वर—(शकरकन्द गलीमें ही आगे म०नं० डी० ७।६ में)।

३८-मन:प्रकामेश्वर—(साक्षीविनायकके आगे म०नं० डी० १०।५० में)।

३९-ईशानेश्वर—(कोतवालपुरा, बाँसफाटक सिनेमाके बगलकी गली, म०नं० सी०के० ३७।६९ वर्तमानमें शापुरीमाल-परिसरमें)।

४०-चण्डी-चण्डीश्वर—(कालिकागली, म०नं० डी० ८।२६)।

४१-भवानीशंकर—अन्नपूर्णाजीके बगलमें राममन्दिर जगन्नाथके बगलमें)।

४२-राजराजेश्वर—(ज्ञानवापीके पश्चिम बाजार, ढुंढिराज गली म०नं० सी०के० ३५।३३)।

४३-लांगलीश्वर—(खोवा बाजार, म०नं० सी०के० २८।४)।

४४-नकुलीश्वर—(अक्षयवट, हनुमान्‌जीमें, म०नं० सी०के० ३५।२१)।

४५-परान्नेश्वर—(ज्ञानवापीके पश्चिम बाजारमें, म०नं० सी०के० ३५।३४)।

४६-परद्रव्येश्वर—(ज्ञानवापीके पश्चिम बाजारमें, म०नं० सी०के० ३५।३४)।

४७-प्रतिग्रहेश्वर—(ज्ञानवापीके पश्चिम बाजारमें, म०नं० सी०के० ३५।३४)।

४८-निष्कलंकेश्वर—(ज्ञानवापीके पश्चिम बाजारमें, म०नं० सी०के० ३५।३४)।

४९-मार्कण्डेयेश्वर—(म०नं० सी०के० ३६।१०)।

५०-अप्सरेश्वर—(राधा-कृष्णकी धर्मशाला, म०नं० सी०के० ३०।१)।

५१-गंगेश्वर—(ज्ञानवापी गुप्त)।

केदारेश्वर-लिंग

काशीमें केदारेश्वरके चार लिंग हैं। प्रसिद्ध केदार-लिंग केदारघाटपर स्थित है। इस लिंगपर एक बड़ी-सी रेखा बनी हुई है। काशी-केदार-माहात्म्यसे पता चलता है कि यह रेखा राजर्षि मान्धाताने मूँगकी खिचड़ीमें इसलिये लगायी थी कि इसका एक भाग अतिथिको दिया जा सके।

राजर्षि मान्धाता चौथे वयस्‌में काशी आ गये थे। उन्होंने प्रतिदिन पंचकोशीका नियम ग्रहण किया। नित्य-क्रिया करके वे पंचकोशीकी यात्रापर बिना कुछ खाये निकल जाया करते थे। शामको लौटकर अतिथिको खिलाकर भोजन किया करते थे।

एक दिन मान्धाताको आकाशवाणी सुनायी पड़ी। आकाशवाणीका आदेश था कि 'मान्धाता आगे भोजन करके यात्रा किया करें।' मान्धाता सन्देहमें पड़ गये। जिस नियमके पालनसे मान्धाताको आकाशवाणी-जैसी दुर्लभ नादकी उपलब्धि हुई थी, उसी नियमको वह

तोड़नेका आदेश दे रही थी। मान्धाताने अपना सन्देह ऋषियोंके सामने रखा। ऋषियोंने निर्णय दिया कि 'मान्धाता' आकाशवाणीका ही पालन करें। ऋषियोंने कहा कि तुम कुछ खाकर तैयार हो जाओ। हमलोग भी तुम्हारे साथ ही यात्रा करेंगे।

मान्धाता केदारघाट लौट आये और शीघ्रतामें मूँगकी खिचड़ी तैयार की। उसमें लकीर लगाकर आधा भाग अतिथिके लिये निश्चित कर दिया। किंतु इतना सबेरे अतिथिका मिलना कठिन हो रहा था। इसी बीच ऋषिलोग आ पहुँचे। मान्धाता असमंजसमें पड़ गये। यह बात उन्हें खल रही थी कि ऋषिलोग उनकी प्रतीक्षामें बैठे हैं। वे चिन्तित होकर भगवान्‌को पुकारने लगे। इसी बीच कोई पुरुष उन्हें दीख पड़ा। उसने आकर आतिथ्य स्वीकार कर लिया। जब मान्धाता उनके भागकी खिचड़ी निकालने लगे, तब उनकी अँगुलियाँ ही उसमें नहीं धँस रही थीं। वह तो ठोस पत्थर बन गयी थी। मान्धाता दोहरी चिन्तामें पड़कर भगवान्‌को पुकारने लगे। शीघ्र ही उन्हें दीख गया कि वह अतिथि प्रकाशपुंज बनकर उस खिचड़ीमें प्रविष्ट हो गया है। वे भगवान् शंकर ही थे। उन्होंने मान्धाताको प्रत्यक्ष दर्शन दिया। ऋषिलोग भी दर्शन पाकर हर्षसे उल्लसित हुए। भगवान्‌ने मान्धाताको तीन वरदान दिये—

(१) केदारखण्डमें भैरवी यातना नहीं भोगनी पड़ेगी।

(२) काशीका अपराध, शिवका अपराध और शिव-भक्तका अपराध—ये तीनों अपराध भी इस केदारलिंगके दर्शनसे निवृत्त हो जायँगे।

(३) उक्त तीनों अपराध करनेवालोंको केदार-लिंगका दर्शन नहीं होता था। तीसरे वरदानसे यह दर्शन सर्वसुलभ हो गया।

केदार-लिंगके दर्शनका बहुत महत्त्व है। पार्वतीजीने बताया है कि जो केदारेश्वरकी यात्राकी इच्छा करता है, उसके जन्मभरके संचित पाप उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं (का०खं० ७७।४)। यदि कोई घरमें भी रह करके सन्ध्याके समय तीन बार केदारका नाम ले लेता है तो उसे केदारकी यात्राका फल प्राप्त हो जाता है (का०खं० ७७।७)। केदारेश्वरके मन्दिरका शिखर देख वहाँका जल पी लेनेसे सात जन्मोंके पाप छूट जाते हैं—

दृष्ट्वा केदारशिखरं पीत्वा तत्रत्यमम्बु च।
सप्तजन्मकृतात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः॥

(का०खं० ७७।८)

भौमवती अमावास्यामें यदि केदार-कुण्डपर श्राद्ध किया जाय तो गया-श्राद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं रहती—

भौमवारे यदा दर्शस्तदा यः श्राद्धदो नरः।
केदारकुण्डमासाद्य गयाश्राद्धेन किं ततः॥

(का०खं० ७७।५९)

केदारेश्वरकी अन्तर्गृहीमें लगभग सवा सौ शिवलिंग आते हैं, उनका प्रत्येकका विवरण विस्तारके भयसे नहीं दिया जा रहा है।

ओंकारेश्वर-लिंग

काशीमें अनेक लिंग हैं। यहाँ जितने लिंग स्थापित किये गये हैं, वे दृश्य हों अथवा अदृश्य, दुर्व्यवस्थामें पड़े हों या कालचक्रकी महिमासे टूट-फूट गये हों, सर्वथा पूजनीय हैं। भगवान् शंकरने इनकी गिनती की थी। वे सौ परार्ध संख्यातक ही गिन पाये थे (का०खं० ७३।२४-२५)।

ओंकारेश्वरका लिंग अमरकंटक-क्षेत्रसे लाया गया है। इनके प्रादुर्भावकी कथा है कि ब्रह्माजीने आनन्दवनमें उग्र समाधि लगाकर तपस्या की। हजार युग बीतनेपर सातों पातालोंको फोड़कर दिग्-दिगन्तरोंको प्रकाशित करती हुई एक ज्योति प्रकट हुई। भूमिके फटनेसे जो चरचराहटकी आवाज हुई, उससे ब्रह्माकी समाधि खुल गयी। वह ज्योति ओंकाररूपमें थी। वही लिंग-रूपसे आज भी जनताका कल्याण कर रहे हैं। ब्रह्माण्डमें जितने तीर्थ हैं, वे सब वैशाखमासके शुक्ल पक्षकी चतुर्दशीको ओंकारेश्वरका दर्शन करने आते हैं—

ब्रह्माण्डोदरमध्ये तु यानि तीर्थानि सर्वतः।
तानि वैशाखभूतायामायान्त्योङ्कृतिदर्शने॥

(का०खं० ७४।१००)

भगवान्‌ने श्रीमुखसे कहा है—'हे ब्रह्मन्! मैं ओंकारेश्वरलिंगमें सदा स्थित रहूँगा और पूजकोंको मोक्ष दिया करूँगा—

अस्मिँल्लिङ्गे सदा ब्रह्मन् स्थास्यामीति विनिश्चितम्।
दास्यामि च सदा मोक्षमेतल्लिङ्गार्चकाय वै॥

(का०खं० ७३।१७३)

सौसे अधिक शिवलिंग

ओंकारेश्वरकी अन्तर्गृहीमें सौसे अधिक शिवलिंग आते हैं। कुछ प्रमुख लिंगोंका परिचय दिया जाता है—

मृत्युंजयेश्वर

वृद्धकालेश्वरसे दक्षिण अपमृत्युका नाश करनेवाला मृत्युंजय महादेव (मृत्वीश) नामक लिंग है। इस लिंगके दर्शन-पूजनसे घोर-से-घोर रोगादिकी निवृत्ति हो जाती है।

(का०खं० ९७। १२९)

वृद्धकालेश्वर

मृत्युंजय महादेवके मन्दिरमें ही वृद्धकालेश्वर-लिंग है। इस लिंगकी पूजासे महाकाल भी निवृत्त हो जाता है। यह लिंग कलियुगरूपी महाज्वालाका नाश कर देता है और जीवनको जीवन बना देता है—

वृद्धकालेश्वरं लिङ्गं महाकालनिवारणम्।
कलिकालमहाज्वालाज्वालं जीवनजीवनम्॥

(ब्रह्मवैवर्तपु०, त्रिस्थलीसेतु० पृ० ११७)

त्रिलोचनेश्वर-लिंग

पिलपिलातीर्थमें स्नान करके त्रिलोचन-महादेवका दर्शन कर लेनेसे किसी बातका सोच नहीं रह जाता (का०खं० ७५। १२)। त्रिलोचन-लिंग सब लिंगोंमें उसी तरह श्रेष्ठ है, जैसे तारावलियोंमें चन्द्र (का०खं० ७५। २६)।

काशीमें गंगालाभसे मुक्ति

काशीमें एक साध्वी वृद्धा विधवा रहती थीं। हम उन्हें 'खालिसपुराकी माँ' के नामसे जानते हैं। सब प्रकारसे सम्बलहीन होकर केवल धर्मके ऊपर निर्भर रहकर वे काशीसेवन करती थीं। हमारी धारणा है कि वे धार्मिक जीवनमें बहुत ऊँची भूमिकापर स्थित थीं। कुछ समयतक उनके पास रहनेसे या उनके वाक्य श्रवण करनेसे मन एक अपूर्य धर्मभावसे पूर्ण हो जाता था। उनके जीवनकी निम्नलिखित घटना मैंने कई मित्रोंके साथ उन्हींके मुखसे सुनी थी। उसे उन्हींके शब्दोंमें यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

'उस समय मेरे स्वामी जीवित थे। एक बूढ़ी बिल्ली कहींसे आकर हमारे घरमें रहने लगी। उसमें विशेषता यह थी कि वह हमारे साथ निरामिष आहार करती, मांस खानेके लोभमें दूसरी जगह कहीं नहीं जाती एवं एकादशीके दिन कुछ भी नहीं खाती थी। ज्यादातर मेरे पास पड़ी रहती। काल-क्रमसे उस बिल्लीकी मृत्यु हुई और उसे सड़कपर एक तरफ फिंकवा दिया गया, जिससे उसे डोम आकर उठा ले जायँ। पर मैंने सोचा, डोम उसे न जाने कहाँ ले जाकर फेंकेगा? ऐसी हिंसाशून्य सद्गुणी बिल्ली तो देखनेमें नहीं आती, क्या इसका शव गंगामें नहीं डाला जा सकता?

स्वामीसे जब मैंने यह कहा तो वे पहले कुछ नाराज-से हुए। बिना मतलब उन्हें एक दुर्गन्धमय मृत पशुको ले जाना ठीक नहीं मालूम पड़ा, परंतु पीछे मेरे हृदयकी वेदनाका अनुभवकर वे उसे ले जानेको राजी हो गये। मैंने बिल्लीको लाल कपड़ेके एक टुकड़ेमें लपेट दिया। वे उसको गंगामें बहा आये और आकर मुझसे बोले कि 'बिल्लीको तुम्हारी मनचाही गंगाप्राप्ति हो गयी।' इस घटनाके पाँच-छः दिन बाद अकस्मात् एक दिव्य मनुष्याकृति सधवा रमणी, जो लाल पाड़की साड़ी पहने थी और जिसकी माँगमें सेंदुर भरा था, मेरे समीप आकर बैठ गयी। मैंने पूछा—'बहन! तुम कौन हो? उसने कहा—मैं वही बिल्ली हूँ, जिसे तुमने दया करके गंगाजीमें प्रवाहित करा दिया था; अब मैं मुक्त होकर जा रही हूँ, इसलिये जानेके पहले तुमसे मिलने आयी हूँ।' यह कहकर वह तुरंत अन्तर्धान हो गयी। मैं अपने आसनपर बैठी रह गयी। मैंने देखा, कितने ही देवी-देवता उसके आगमनकी प्रतीक्षामें बैठे हैं, न जाने किस पापसे बेचारीको कुछ दिनोंतक बिल्लीकी योनिमें रहना पड़ा!'—श्रीसत्यजी ठाकुर

भक्तगाथा—

भक्त रामनारायण

भक्त लाला रामनारायणजीकी जन्मभूमि तो पंजाब थी, परंतु वे बहुत समयसे आकर बस गये थे मोक्षदायिनी भगवान् शंकरकी काशीपुरीमें। उनके साथ पंजाबके कई लोग और भी आये थे। रामनारायणजी भगवान् शंकरके अनन्य भक्त थे। प्रतिदिन बहुत तड़के ही गंगा-स्नान करके वे भगवान् विश्वनाथजीके दर्शन करते और फिर घर लौटकर पार्थिवपूजन, शिवसहस्रनामका पाठ, महामृत्युंजयमन्त्रका भक्ति-श्रद्धापूर्वक जप करते थे। मध्याह्नतक उनका पूजा-पाठ चलता। उनकी पत्नी शारदा और पुत्र शम्भुशरण भी भगवान् शिवजीके बड़े भक्त थे। कल्याणकारी **'नमः शिवाय'** का अनवरत जप तो परिवारभरका स्वभाव ही बन गया था। आशुतोष भगवान् शंकरकी कृपासे रामनारायणजीका व्यापार चमका और वे थोड़े ही दिनोंमें सुख-समृद्धिसे सम्पन्न हो गये।

धनसे अभिमान और स्वार्थ बढ़ा करता है, परंतु श्रीशंकरजीकी कृपासे यहाँ सर्वथा विपरीत परिणाम हुआ। श्रीरामनारायणजीके ज्यों-ज्यों सुख-समृद्धि और धन-ऐश्वर्य बढ़ा, त्यों-ही-त्यों उनमें नम्रता, विनय, त्यागकी भावना और अन्यान्य दैवी-सम्पत्तिके गुण बढ़ते गये। सत्पुरुषोंके पास आये हुए न्यायोपार्जित धनका सुकृत और सेवामें ही सदुपयोग हुआ करता है, इस सिद्धान्तके अनुसार रामनारायणजीका धन सत्कार्योंमें लगने लगा। इससे उनकी कीर्ति भी बढ़ी।

पंजाबसे उनके साथ आये हुए लोगोंमें एक लाला दयालीराम थे। वे रामनारायणजीकी उन्नतिसे मन-ही-मन जला करते। यद्यपि रामनारायणजी हर तरहसे स्वाभाविक ही उनके साथ बड़ी उदारता और प्रीतिका व्यवहार करते, फिर भी लाला दयालीरामकी द्वेषबुद्धि बढ़ती गयी। श्रीरामनारायणजीको इस बातका कुछ भी पता नहीं था, परंतु दबी आग कबतक रह सकती है। ईंधन और हवाका झोंका पाते ही धधक उठती है। इसी प्रकार मौका पाते ही लाला दयालीरामकी द्वेषाग्नि भड़क उठी। अब तो वे खुल्लमखुल्ला रामनारायणजीसे वैर करने लगे और भाँति-भाँतिसे उन्हें सताने, परेशान करने और हानि पहुँचानेका प्रयत्न करने लगे। गालियाँ देने, गुण्डोंसे पिटवाने, आग लगा देने और व्यापारमें नुकसान पहुँचाने आदिके रूपमें वैर-सम्पादनके भाँति-भाँतिके प्रयत्न दयालीरामकी ओरसे चलने लगे!

एक दिन रामनारायणजी गंगास्नान करके आ रहे थे। दयालीरामने अचानक स्वयं आकर उनके दो जूते लगा दिये। रामनारायणजी हँसते हुए चले गये, परंतु उन्हें अपने साथी दयालीरामकी इस गिरी हुई हालतपर बड़ी दया आयी। वे उनकी दुःस्थितिके कारण दुखी हो गये। अपने अपमान और जूतोंकी मारके कारण नहीं, परंतु दयालीरामकी मानसिक दुर्भावनाके कारण वे चिन्तातुर हो गये। उन्होंने सोचा, कैसे दयालीरामजीकी वृत्ति ठीक हो। उन्होंने मन-ही-मन उनसे विशेष प्रेम करनेका संकल्प किया और संकल्पानुसार कार्य भी आरम्भ कर दिया। यह नियम है कि जब हम किसीके सम्बन्धमें अपने मनमें द्वेष और वैरके विचार रखते हैं, तब वे हमारे विचाररूपी राक्षस उसकी ओर जाते हैं और उसके मनमें भी द्वेष और वैरके विचार उत्पन्न करके उनको फिर अपनी ओर खींचते हैं। स्वार्थ, क्रोध, हिंसा, मद और लोभ आदिके विचारोंका भी ऐसा ही असर होता है। इस प्रकार परस्परमें अशुभ विचार बढ़ते रहकर तमाम वातावरणको और तमाम जीवनको अशुभ बना देते हैं। इसके बदलेमें यदि किसीके प्रति प्रेमके विचारोंका पोषण हो तो वे भी वहाँतक पहुँचते हैं और उसके मनमें उभड़े हुए द्वेषको दबाकर प्रेमके भाव पैदा करते हैं। यों यदि बार-बार प्रेमके विचारोंको बढ़ा-बढ़ाकर भेजा जाय तो अन्तमें उसका द्वेष मिट जाता है और वह भी प्रेम करने लगता है। प्रेम प्रेमका और द्वेष द्वेषका जनक है। लाला दयालीरामके मनमें वैर था, परंतु रामनारायणजीके मनमें अत्यन्त सुदृढ़ और महान् प्रेम भरा था। अतएव दयालीरामके द्वेषके विचारोंका रामनारायणजीके प्रेमके बढ़े हुए विचारोंपर कोई असर नहीं हुआ; बल्कि वे

विचार प्रेमके प्रबल विचारोंसे दबने लगे और उत्तरोत्तर क्षीणशक्ति होकर लौटने लगे। साथ ही रामनारायणजीके बढ़े हुए निर्मल और प्रबल प्रेमके विचार लगातार वहाँ पहुँचने लगे और उनके हृदयके अशुभ भावोंको क्रमशः मिटाने लगे। अब लाला दयालीरामको अपने कियेपर बीच-बीचमें पश्चात्ताप भी होने लगा।

इधर लाला रामनारायणजीको धैर्य नहीं हुआ, वे शीघ्र-से-शीघ्र दयालीरामको शुभ स्वरूपमें देखनेके लिये आतुर हो गये। अतएव उन्होंने एक दिन रातको एकान्तमें आर्त होकर भगवान् आशुतोषसे करुण प्रार्थना की—

'मेरे स्वामिन्! मुझे अपने साथी लाला दयालीरामजीके इस पतनका बड़ा ही दुःख है। आप अन्तर्यामी हैं; यदि मेरे मनमें उनके प्रति जरा भी द्वेष रहा हो या अब भी कहीं हो तो मुझे उसका कड़ा दण्ड दीजिये; परंतु उनके मनमें शान्ति, सौहार्द और प्रेम पैदा कर दीजिये। मेरे नरकाग्निकी पीड़ा भोगनेसे भी यदि उनका चित्त शुद्ध होता हो तो मेरे भगवन्! शीघ्र-से-शीघ्र इसकी व्यवस्था कीजिये, आपके दिये हुए धन-ऐश्वर्य और मान-कीर्तिसे यदि उनके मनमें दुःख होता हो तो प्रभो! अपनी इन चीजोंको आप तुरंत वापस ले लीजिये। मुझे तुरंत राहका भिखारी और सर्वथा दीन-हीन, अपमानित बना दीजिये। ऐसा धन-वैभव और यश-सम्मान किस कामका, जो किसी भी प्राणीके दुःखका कारण हो। फिर भगवन्! जहाँतक, मेरे मनका मुझे पता है, मैंने तो कभी स्वामीसे धन-सम्मानके लिये प्रार्थना भी नहीं की थी। मैं तो स्वामीकी दी हुई वस्तुओंको नित्य स्वामीकी ही सम्पत्ति मानकर स्वामीके आज्ञानुसार स्वामीकी सेवामें ही लगानेका प्रयत्न करता रहा हूँ, परंतु ऐसा कहना भी मेरा अभिमान ही है। मैं क्या प्रयत्न करता हूँ। स्वामी ही तो सब कुछ करा रहे हैं। इस समय भी मैं जो कुछ कह रहा हूँ, इसमें भी तो दयामय स्वामीकी ही प्रेरणा है। प्रभो! प्रभो! मैं दम्भ करता हूँ, मेरे मनमें अवश्य ही कोई दोषबुद्धि, कोई पापभावना रही होगी। मेरा मन सचमुच ही किसी छिपे अपराधसे भरा होगा, तभी तो मेरे कारण मेरे साथीको इतना उद्वेग हो रहा है। मैं ही तो उनके जीवनकी अशान्ति और व्यथाका कारण हूँ। मैं यह भी कैसे कह सकता हूँ कि मेरे मनमें धन-सम्मानकी कामना नहीं थी और मैं इसका केवल स्वामीकी सेवामें ही सदुपयोग कर रहा हूँ। प्रभो! अपना पाप मुझे दीख नहीं रहा है। यह मेरा और भी अपराध है। मेरे औढरदानी महादेव! मुझपर आपकी कितनी कृपा है। मैं क्या कहूँ? स्वामीकी कृपा और मेरी नालायकीमें मानो होड़ लग गयी है! अब जैसा स्वामी उचित समझें, वैसा ही हो, परंतु मेरा मन बार-बार इस दुःखसे रो रहा है कि कैसे दयालीरामजीकी अशान्ति मिटे……………।'

हृदयकी सच्ची प्रार्थना निश्चय ही सफल होती है। फिर भगवान् शंकर तो आशुतोष ठहरे। प्रार्थना करते-करते ही रामनारायणजी समाधिस्थ हो गये। उन्होंने देखा—भगवान् वृषभवाहन सामने उपस्थित हैं। बड़ी ही उज्ज्वल कर्पूरधवल कान्ति है, सिरपर पिंगल जटाजूट है। गलेमें वासुकि शोभा पा रहे हैं। एक हाथमें त्रिशूल, दूसरेमें डमरू, तीसरेमें रुद्राक्षकी माला है और चौथे हाथसे अभयदान दे रहे हैं। कटिमें रीछकी छाल पहने हैं। विशाल नेत्रोंसे मानो कृपासुधाकी वर्षा हो रही है। होठोंपर मुसकान है। देवदेव श्रीशंकरजीके दर्शन पाकर लाला श्रीरामनारायणजी कृतार्थ हो गये। उनके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु

बहने लगे, शरीर रोमांचित हो गया, आनन्दातिरेकसे वाणी बन्द हो गयी। भगवान्‌ने उसके मस्तकपर अभयहस्तारविन्द रखा और कहा—'रामनारायण! तेरी श्रद्धा, भक्ति और निष्काम सेवाने मुझको अपने वशमें कर लिया है। यह दयालीराम पूर्वजन्ममें पिशाच था, इसके पहले जन्ममें वह दक्षिणापथमें ब्राह्मण था और तू वहींपर एक व्यापारी था। तेरी बुद्धि उस समय भी श्रेष्ठ थी। वह ब्राह्मण होनेपर भी कुसंगमें पड़कर मद्य-मांसका सेवन करता था और डाके डालकर धन कमाया करता था। उसमें बड़ी क्रूरता आ गयी थी। एक दिन उसने तेरे घरमें डाका डाला। तूने उसके साथ उस समय भी बड़ा सद्व्यवहार किया और मनमाँगा धन देनेके बाद उसे मेरी भक्ति और '**नमः शिवाय**' मन्त्र-जाप करनेका उपदेश दिया। तेरे सद्व्यवहारका उसपर बड़ा प्रभाव पड़ा और वह मेरी पूजा करने लगा। एक बार रामेश्वरमें जाकर उसने मुझपर जल और बिल्वपत्र चढ़ाये थे। अपने पापोंके कारण वह दूसरी योनिमें पिशाच हुआ, परंतु तेरे संग तथा मेरी पूजाके फलस्वरूप वह योनि दस ही वर्षोंमें छूट गयी और उसने पुनः क्षत्रिय-कुलमें जन्म धारण किया। पिछले मानवशरीरमें उसका जीवन द्वेष, हिंसा, क्रोध और वैरकी भावनाओंका घर बना हुआ था। निरीहोंको सताना और भला करनेवालोंका भी बुरा करना उसका स्वभाव बन गया था। उन्हीं संस्कारोंके कारण उसने इस जन्ममें भी तुझसे वैर-विरोध किया, परंतु तेरा हृदय सर्वथा निर्वैर तथा पवित्र प्रेमसे परिपूर्ण होनेके कारण उसके वैरने तुझपर तो कोई असर किया ही नहीं, प्रत्युत तेरे प्रेमसे उसका हृदय क्रमशः पवित्र होता गया है। आज तो तेरी प्रार्थनासे वह सर्वथा पवित्र हो गया है। तुझे धन्य है, जो अपनी सद्भावनासे तू असतोंको सत् बना रहा है। मैं तुझपर बहुत ही प्रसन्न हूँ! मैं जानता हूँ तेरी धन-सम्मानमें जरा भी आसक्ति नहीं है। इसीसे तो उनके द्वारा मेरी आदर्श सेवा हो रही है। आसक्तिमान् पुरुषके धनसे मेरी (भगवान्‌की) सेवा नहीं बन सकती। तू सुख-शान्तिपूर्वक यहाँका कर्तव्य पूरा करके मेरे दिव्यलोकमें जायगा। निश्चिन्त रहकर मेरा भजन करता रह।'

भगवान् श्रीशंकरजी इतना कहकर ज्यों ही अन्तर्धान हुए, त्यों ही लाला रामनारायणजीकी समाधि टूटी। उन्होंने देखा—दयालीराम चरणोंमें पड़े रो रहे हैं। रामनारायणजीने उनको भगवान् शंकरका कृपापात्र समझकर उठा लिया। दयालीराम चरण छोड़ना नहीं चाहते थे। बार-बार अपनी करतूतोंका वर्णन करते हुए कातर कण्ठसे रो-रोकर क्षमा माँग रहे थे। उनको सच्चा पश्चात्ताप था। भगवान् शंकरजीकी कृपा, रामनारायणजीके सद्भाव और सच्चे पश्चात्तापकी आगने उनके समस्त पाप और पापबीजोंको जला दिया। श्रीरामनारायणजीने उठाकर उन्हें हृदयसे लगा लिया और बहुत तरहसे सान्त्वना देकर तथा श्रीशंकरजीकी भक्तिका उपदेश देकर विदा किया।

श्रीदयालीरामके मनमें पूर्वजन्मकी स्मृति आ गयी। वे '**नमः शिवाय**' मन्त्रका जाप तथा भक्तिपूर्वक श्रीशंकरजीकी उपासनामें लग गये। रामनारायणजीके साथ उनका प्रेम अटूट हो गया। दोनों साथी भगवान् श्रीविश्वनाथजीकी सेवामें समर्पण करके कृतकृत्य हो गये।

श्रीशिवसूक्तिः

जय जय हे शिव दर्पकदाहक दैत्यविघातक भूतपते दशमुखनायक शायकदायक कालभयानक भक्तगते।
त्रिभुवनकारकधारकमारक संसृतिकारक धीरमते हरिगुणगायक ताण्डवनायक मोक्षविधायक योगरते॥

हे मदनदाहक! दैत्यकदन! भूतनाथ! हे दशशीश-स्वामिन्! हे [अर्जुनको] धनुष देनेवाले! हे कालको भी भयभीत करनेवाले! हे भक्तोंके आश्रय! हे त्रिलोकीकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेवाले! हे जगद्रचयिता धीरधी महादेव! हे हरिगुणगायक ताण्डवनायक मोक्षप्रदायक योगपरायण शंकर! आपकी जय हो! जय हो।

[श्रीपूर्णचन्द्रकृत उद्भटसागर]

ज्योतिर्लिंग-परिचय—

द्वादश ज्योतिर्लिंगोंके अर्चा-विग्रह

इस विश्वमें जो कुछ भी दृश्य देखा जाता है तथा जिसका वर्णन एवं स्मरण किया जाता है, वह सब भगवान् शिवका ही रूप है। करुणासिन्धु अपने आराधकों, भक्तों तथा श्रद्धास्पद साधकों और प्राणिमात्रकी कल्याणकी कामनासे उनपर अनुग्रह करते हुए स्थल-स्थलपर अपने विभिन्न स्वरूपोंमें स्थित हैं। जहाँ-जहाँ जब-जब भक्तोंने भक्तिपूर्वक भगवान् शम्भुका स्मरण किया, तहाँ-तहाँ तब-तब वे अवतार लेकर भक्तोंका कार्य सम्पन्न करके स्थित हो गये। लोकोंका उपकार करनेके लिये उन्होंने अपने स्वरूपभूत लिंगकी कल्पना की। आराधकोंकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् शिव उन-उन स्थानोंमें ज्योतीरूपमें आविर्भूत हुए और ज्योतिर्लिंग-रूपमें सदाके लिये विद्यमान हो गये। उनका ज्योतिःस्वरूप सभीके लिये वन्दनीय, पूजनीय एवं नमनीय है। पृथिवीपर वर्तमान शिवलिंगोंकी संख्या असंख्य है तथापि इनमें द्वादश ज्योतिर्लिंगोंकी प्रधानता है। इनकी निष्ठापूर्वक उपासनासे पुरुष अवश्य ही परम सिद्धि प्राप्त कर लेता है अथवा वह शिवस्वरूप हो जाता है। शिवपुराण तथा स्कन्दादि पुराणोंमें इन ज्योतिर्लिंगोंकी महिमाका विशेषरूपसे प्रतिपादन हुआ है। यहाँतक भी कहा गया है कि इनके नाम-स्मरणमात्रसे समस्त पातक नष्ट हो जाते हैं, साधक शुद्ध निर्मल अन्तःकरणवाला हो जाता है और उसे अपने सत्य-स्वरूपका बोध हो जाता है तथा वह विशुद्ध बोधमय, विज्ञानमय होकर सर्वथा कृतार्थ हो जाता है। यहाँ इन्हीं द्वादश ज्योतिर्लिंगोंका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है—

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्।
उज्जयिन्यां महाकालमोंकारे परमेश्वरम्॥
केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशंकरम्।
वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे॥
वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने।
सेतुबन्धे च रामेशं घुश्मेशं च शिवालये॥
द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः सर्वसिद्धिफलं लभेत्॥

(शिवपुराण-कोटिरुद्रसंहिता १। २१—२४)

अर्थात् (१) सौराष्ट्र-प्रदेश-(काठियावाड़)-में सोमनाथ, (२) श्रीशैलपर मल्लिकार्जुन, (३) उज्जैनमें महाकाल, (४) ओंकारमें परमेश्वर, (५) हिमाचलपर केदार, (६) डाकिनीमें भीमशंकर, (७) काशीमें विश्वेश्वर, (८) गौतमीतटपर त्र्यम्बक, (९) चिताभूमिमें वैद्यनाथ, (१०) दारुकावनमें नागेश, (११) सेतुबन्धमें रामेश्वर और (१२) शिवालयमें स्थित घुश्मेश्वर—इन बारह ज्योतिर्लिंगोंके नामोंका जो प्रातःकाल उठकर पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और समस्त सिद्धियोंको प्राप्त कर लेता है। आगे इन्हींका संक्षेपमें वर्णन दिया जा रहा है—

(१) श्रीसोमनाथ

श्रीसोमनाथ ज्योतिर्लिंग गुजरात प्रान्तमें प्रभास-क्षेत्र-(काठियावाड़)-के विरावल नामक स्थानमें स्थित हैं। यहाँके ज्योतिर्लिंगके आविर्भावके विषयमें पुराणोंमें एक रोचक कथा प्राप्त होती है। शिवपुराणके अनुसार दक्ष प्रजापतिकी सत्ताईस कन्याओंका विवाह चन्द्रमा (सोम)-के साथ हुआ था, इनमेंसे चन्द्रमा रोहिणीसे विशेष अनुराग रखते थे। उनके इस कार्यसे दक्ष

प्रजापतिकी अन्य कन्याओंको बहुत कष्ट रहता था। उन्होंने अपनी यह व्यथा-कथा अपने पिताको सुनायी। दक्षप्रजापतिने इसके लिये चन्द्रदेवको बहुत प्रकारसे समझाया, किंतु रोहिणीके वशीभूत उनके हृदयपर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अपनी अन्य कन्याओंके साथ विषमताका व्यवहार देखकर कुपित हो दक्षने चन्द्रमाको क्षय-रोगसे ग्रस्त हो जानेका शाप दे दिया। इस शापके कारण चन्द्रदेव तत्काल क्षयग्रस्त हो गये। उनके क्षयग्रस्त हो जानेसे सुधा-किरणोंके अभावमें सारा संसार निष्प्राण-सा हो गया। क्षयग्रस्त होनेसे दुखी चन्द्रमाने ब्रह्माजीके कहनेपर भगवान् आशुतोषकी आराधना की। चन्द्रमाने छः महीनेतक स्थिर चित्तसे खड़े रहकर भगवान् शिवके मृत्युंजय स्वरूपका ध्यान करते हुए दस करोड़ मृत्युंजय मन्त्रका जप किया। तब भगवान्ने प्रसन्न होकर दर्शन दिया और चन्द्रमाको अमरत्व प्रदान करते हुए मास-मासमें पूर्ण एवं क्षीण होनेका वर दिया। इस प्रकार भगवान् आशुतोष सदाशिवकी कृपासे चन्द्रमा रोगमुक्त हो गये और दक्षके वचनकी भी रक्षा हो गयी। तदनन्तर चन्द्रमा तथा अन्य देवताओंके द्वारा प्रार्थना करनेपर भगवान् शंकर उन्हींके नामसे ज्योतिर्लिंगके रूपमें वहाँ स्थित हो गये और सोमनाथके नामसे तीनों लोकोंमें विख्यात हुए। सोमनाथका पूजन करनेसे वे उपासकके क्षय तथा कुष्ठ आदि रोगोंका नाश कर देते हैं। वहीं सम्पूर्ण देवताओंने सोमकुण्ड (चन्द्रकुण्ड)-की भी स्थापना की है, जिसमें शिव और ब्रह्माका सदा निवास माना जाता है। यह कुण्ड इस भूतलपर पापनाशन तीर्थके रूपमें प्रसिद्ध है। जो मनुष्य इसमें स्नान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। क्षय आदि जो असाध्य रोग होते हैं, वे सब उस कुण्डमें छः मासतक स्नान करनेमात्रसे नष्ट हो जाते हैं। मनुष्य जिस फलके उद्देश्यसे इस उत्तम तीर्थका सेवन करता है, उस फलको सर्वथा प्राप्त कर लेता है—इसमें संशय नहीं है।

ऐतिहासिक विवरणके अनुसार सोमनाथका सुप्रसिद्ध शिव-मन्दिर काठियावाड़के प्रभासपट्टन नामक समुद्रतटीय स्थलपर गुजरातके चालुक्योंद्वारा निर्मित कराया गया था। इस मन्दिरमें अपार धन-सम्पत्ति थी। दस सहस्र ग्रामोंकी आय इस मन्दिरको प्राप्त होती थी। मन्दिरके उपास्य देव (भगवान् सोमनाथ)-की पूजाके लिये उत्तर भारतसे प्रतिदिन गंगाजल वहाँ ले जाया जाता था। इस मन्दिरमें दैनिक पूजन-कृत्यके सम्पादनके लिये एक सहस्र ब्राह्मण पुजारी नियुक्त थे, साथ ही ३५० गायकों एवं नर्तकियोंकी भी सेवा मन्दिरको समर्पित थी।

इस प्रभूत धन-वैभवसम्पन्न मन्दिरपर सन् १०२४ ई० में गजनीके सुलतान महमूदने आक्रमणकर इसे अपने अधिकारमें कर लिया। मन्दिरकी अपार सम्पत्ति तो उसने लूट ही ली, विशाल शिवलिंगके टुकड़े-टुकड़े भी कर दिये।

गुजरातके राजा भीमदेव प्रथमने पुनः पुराने सोमनाथ मन्दिरके स्थानपर जो ईंटों और लकड़ीसे बना था, पत्थरका नया मन्दिर बनवाना प्रारम्भ किया, बादमें सिद्धराज जयसिंह, विजयेश्वर कुमार पाल तथा सौराष्ट्रके खंगारराजने भी इसका जीर्णोद्धार कराकर इसे पुनः समृद्ध किया, परंतु मुसलमान शासकों अलाउद्दीन खिलजी, मुजफ्फरशाह और अहमदशाहकी धर्मान्धताका यह बराबर शिकार होकर नष्ट-भ्रष्ट होता रहा। देशके स्वतन्त्र होनेपर सोमनाथके मूल मन्दिरके स्थानपर ही एक भव्य मन्दिरका निर्माण कराया गया, जिसका तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसादने उद्घाटन किया।

इस मन्दिरके पास ही इन्दौरकी महारानी अहल्याबाई होल्करने भी भगवान् सोमनाथका एक मन्दिर बनवाया है। इसी पवित्र प्रभास-क्षेत्रमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने अपनी लीलाओंका संवरण किया था। भगवान् सोमनाथका ज्योतिर्लिंग गर्भगृहके नीचे एक गुफामें है, जिसमें निरन्तर दीप जलता रहता है। [**क्रमशः**]

कहानी—

तीर्थयात्रा

(श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')

'भगवन्! हमलोग आज कहाँ हैं?' एक काषाय-वस्त्रधारी तरुणने पूछा। यात्रियोंके इस दलमें संन्यासी कोई नहीं है; किंतु तीर्थयात्री होनेके कारण सभी काषाय-वस्त्र पहनते हैं। सबके मस्तक तथा दाढ़ी-मूँछके बाल बढ़ गये हैं, नख लंबे हो गये हैं और वस्त्र मलिन हो रहे हैं, घरसे सब सम्पूर्ण केश मुण्डित कराके चले थे; किंतु केश तो घासकी भाँति बढ़ते हैं और ये ठहरे तीर्थयात्री, घर छोड़े इन्हें कई मास हो गये। अभी तो कई मास और लगने हैं इन्हें। तीर्थयात्रामें न क्षौर कराया जा सकता, न वस्त्र धुलवाये जा सकते और न तैल-मर्दन ही उपयुक्त है।

'भगवान्के मार्गमें भद्र! तुम आकुल क्यों होते हो? हम मार्ग भूल गये हैं; किंतु ऐसा कौन-सा मार्ग है जिसमें वह नहीं है। वह जानता है कि हम उसकी ओर चले हैं।' बड़ा स्थिर स्वर, बड़ी भव्य शान्ति थी त्रिपुण्ड्र-मण्डित भव्य भालपर। हाथमें लाठी और कमण्डलु, कन्धेपर झोला और कटिके वस्त्रोंको समेटकर ऊपर बँधा एक वस्त्रखण्ड। सबसे वृद्ध होनपर भी यात्रामें वे सबसे आगे चल रहे थे।

'बाबा! आज हम कहाँ ठहरेंगे?' कृषक-जैसे दीखते एक व्यक्तिने पूछा, जो सम्भवतः थक चुका था। उसकी आधी पकी मूँछोंपर धूलि जम रही है और भौंहोंके केश ललाटके बहे पसीने और धूलिसे मिलकर कीचड़में लथपथ-से लगते हैं, इसकी ओर उसका ध्यान नहीं था। उसके श्वासकी गति बढ़ी हुई थी। दूसरों-की भाँति उसके पैर भी बिवाइयोंसे चिथड़े हो रहे थे और उन बिवाइयोंमेंसे निकली रक्तकी बूँदे धूलिमें सनकर जम गयी थीं।

'जहाँ कहीं जल मिलेगा, वहीं हम आज रात्रि-विश्राम करेंगे। तनिक पैर दबाये आओ भाई!' आगे चलनेवाले वृद्धने केवल क्षणभरको गति मन्द की और फिर वे शीघ्रतासे चल पड़े। उनकी त्वरा समझमें आने योग्य है। भगवान् भास्कर पश्चिम क्षितिजपर पहुँच चुके हैं। घंटेभरमें वनमें अँधेरा हो जायगा और तब आगे बढ़ना शक्य नहीं रहेगा। 'रात्रिके आगमनके पूर्व एक जलस्रोत मिल जाय या सरोवर·······' वृद्धके चरण बढ़ते जा रहे थे।

'हम इस वनमें ही रात्रि व्यतीत करेंगे?' वृद्धके पीछे चलनेवाले तरुणने चारों ओर देखा। उसे स्मरण आया—चलते समय उसके दोनों पुत्र फूट-फूटकर रोये थे। दोनों पुत्रवधुएँ घूँघटके भीतर हिचकियाँ ले रही थीं और उसका नन्हा पौत्र उसकी गोदसे उतरना ही नहीं चाहता था। यह घोर कानन—आज दिनमें ही चीतेकी गन्ध मिली है। रीछ दीखा है समीपके बेरके वृक्षपर बेर खाता और वाराहयूथ आगे-आगे जा रहा है, यह बात तो रौंदे तृणों तथा तत्काल खोदी भूमिसे सहज अनुमान की जा सकती है। इस वनमें रात्रि-विश्राम—परंतु दूसरा कोई मार्ग तो दीखता नहीं।

'भद्र! भयका तो कोई कारण नहीं है। जिसने आह्वान किया है, वही अपने श्रीचरणोंके समीप पहुँचायेगा। वह ग्राममें है और वनमें नहीं, ऐसा क्यों सोचते हो?' आगे चलनेवाले वृद्धकी श्रद्धा अडिग थी। उनकी श्रद्धाका ही बल है, जो यह दल अबतक चला आ रहा है।

'जो कुछ था डाकुओंने ले लिया और मार पड़ी वह ऊपरसे। अब तो मृत्यु ही रही है, उसे आना है तो वह भी आ जाय!' एक यात्री कुछ स्थूल शरीर है। स्वभावतः चलनेमें उसे अधिक श्रम होता है। वह झुँझला उठा है। इधर उसके स्वभावमें चिड़चिड़ापन भी अधिक आ गया है।

'डाकू आये, यह तो हमारा ही पाप था' आगे चलनेवाले वृद्धने तनिक रुककर पीछे देखा—'तीर्थयात्री स्वर्णमुद्रा लेकर चलेगा तो दस्यु आयेंगे ही। हमारे पास कलके लिये भी संग्रह रहे तो हम विश्वम्भरपर विश्वास कहाँ करते हैं। संग्रह न हो तो छीनने कोई क्यों आये?'

'महाराज! वैसे तो यह शरीर भी संग्रह है और वनमें उसे छीनकर पेट भरनेवाले प्राणी भी आ ही सकते हैं!' स्थूल पुरुषने व्यंग्य किया।

'भैया! भगवान् मल्लिकार्जुन मृत्युंजय हैं। उनके चरणका दर्शन करने जो चला है उसकी आयु पूरी हो जाय मध्यमें, तो भी मृत्युको प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।' वृद्ध कुछ पद लौट आये और स्नेहपूर्वक उन्होंने उस पुरुषके कन्धेपर हाथ रख दिया—'तीर्थयात्राका अर्थ कहीं जाकर जलमें डुबकी लगा लेना और किसी प्रतिमामात्रके दर्शन कर लेना नहीं है। यात्राका अर्थ है तितिक्षा—कष्ट-सहिष्णुता, त्याग, भगवत्स्मरण और एकमात्र प्रभुका आश्रय। जो प्रभु श्रीशैलपर विराजमान हैं, वे ही प्रत्येक प्राणीमें, प्रत्येक वन्य पशुमें हैं। हमपर आपत्ति आती है तब,

जब हम प्रमाद करते हैं, जब हम यात्राके नियम भंग करके कोई सुख-सुविधाकी व्यवस्था करते हैं अथवा संग्रह करने लगते हैं। यदि हम प्रमत्त न हों तो प्रलयंकरके आश्रितोंकी ओर रोग, शोक आदि नेत्र उठाकर देख नहीं सकते।'

बात कई शताब्दी पहलेकी है। देशमें सड़कें नहीं थीं। रेल ओर मोटरोंका स्वप्न भी मनुष्यने नहीं देखा था। फलतः मनुष्य आज-जैसी धोखा-धड़ी एवं छल-प्रपंचसे भी अपरिचित था और आजके रोगोंसे भी। उसका शरीर स्वस्थ था, सुदृढ़ था और उसका मानस श्रद्धा-परिपूत था।

मध्यप्रदेशके एक छोटे-से ग्रामके एक वृद्ध ब्राह्मण-के मनमें लालसा जाग्रत् हुई तीर्थयात्राकी। उन्होंने अपनी इच्छा व्यक्त की और कई सहयोगी मिल गये।

लगभग डेढ़ वर्ष लगा यात्राके लिये प्रस्तुत होनेमें। सभी सगे-सम्बन्धियोंसे मिल लेना था। घरकी पूरी व्यवस्था कर देनी थी। सबसे विदा ले लेनी थी। तीर्थयात्राका अर्थ था घर न लौटनेको प्रस्तुत होकर जाना। मार्गमें वन थे—लंबे-चौड़े व्यापक अरण्य। वनोंमें हिंस्र जन्तु भरे थे और उनसे भी हिंस्र दस्यु तथा वन्य मानव मिलते थे। जब दीर्घकालतक अनिश्चित भटकना हो तो कौन कह सकता है कि कोई कब अस्वस्थ हो जायगा। तीर्थयात्री तो मृत्युको चुनौती देकर ही यात्रा प्रारम्भ करता था।

मुहूर्त निश्चित हुआ। यात्रियोंने अपने वस्त्र गैरिक कर लिये, झोले सिलवा लिये, मुण्डन कराया और हवन हुआ। अन्तमें ग्राम-परिक्रमा करके पूरे ग्रामके लोगोंने ग्रामसीमातक जाकर जयजयकार करते हुए उन्हें विदा दी।

हाथोंमें लाठियाँ और जलपात्र, कंधेपर झोले, मुण्डित मस्तक, नंगे पैर यात्रियोंका दल चल पड़ा। जहाँतक ग्राम-सीमा मिलती रही, बड़ा उत्साह रहा सबमें। प्रत्येक ग्राममें उनका स्वागत हुआ, उनकी पूजा हुई, सोल्लास उनका आतिथ्य हुआ; परंतु वन आना था और वह आया। वनकी यात्रा चलती रही और एक दिन दस्युओंने उन्हें घेर लिया। बिना पूछे तड़ातड़ डंडे पड़ गये दो-दो चार-चार सबपर।

'अरे! किसीके पास कुछ हो तो दे क्यों नहीं देते, अग्रणी वृद्धने अपने साथियोंको पुकारा। साथमें एक कुछ स्थूलकाय श्यामवर्ण वैश्य यात्री थे। उनकी धोतीमें दो स्वर्णमुद्राएँ छिपी थीं। डाकुओंकी मार भी अधिक उनपर ही पड़ी। अन्तमें वे मुद्राएँ डाकुओंको प्राप्त हो गयीं।

'धन्यवाद बन्धुओ!' वृद्ध ब्राह्मणने दस्युओंको हाथ जोड़कर प्रणाम किया—'तुम हमारे प्रभुके भेजे आये हो। यह पाप था हमारे साथ, जिससे तुमने हमें मुक्त कर दिया।' 'आओ भाई! अब हमारी यात्रा निरुपद्रव हो गयी। अमंगल बहुत कम उपद्रव करके विदा हो गया।' स्थूलकाय वृद्धको उन्होंने आश्वासन दिया।

इस धमाचौकड़ीमें यात्रियोंके साथ जो मार्ग-दर्शक था, वह भाग चुका था। दस्यु स्वर्णमुद्राएँ लेकर ऐसे अदृश्य हुए, जैसे शशकके सिरसे सींग। यात्रियोंको अब अपने अनुमानके आधारपर आगे बढ़ना था। घोर वनमें कोई क्या अनुमान करे। वे भटक गये और भटकते ही चले गये। वनके कन्दों तथा पत्तों और सरोवर या निर्झरके जलपर कई दिन काट दिये उन्होंने और तब एक दिन ऐसा आया, जब मध्याह्नोत्तर चलनेपर उन्हें जल मिलना भी कठिन हो गया था।

'हम श्रीशैलकी ही ओर जा रहे हैं?' तरुण भी अत्यन्त श्रान्त हो चुका था। उसकी श्रान्ति इतनी अधिक थी कि आगे भटकनेकी अपेक्षा वन्य पशुओंद्वारा आखेट हो जाना उसे कम भयप्रद प्रतीत होने लगा था।

'भगवान् आशुतोष जानते हैं कि हम श्रीशैल जाना चाहते हैं, इसलिये हम श्रीशैल ही जा रहे हैं और वहाँ निश्चय पहुँचेंगे।' अग्रणी वृद्धका विश्वास अलौकिक था। वैसे न वे मार्ग जानते थे और न उन्हें यही पता था कि श्रीशैल उनके सम्मुख है या पीठकी ओर।

'इस जन्ममें पहुँचते नहीं।' स्थूलकाय व्यक्तिके लिये चलना अब अत्यन्त कठिन हो रहा था। वह खड़ा हो गया और देखने लगा कि 'कोई बैठनेयोग्य वृक्षकी जड़ भी मिल जाय तो उसीपर बैठ जाय।'

'हम इसी जीवनमें पहुँचेंगे और····।' किंतु वृद्धको अधिक बोलना नहीं पड़ा। कोई आ रहा था उनके सम्मुखकी दिशासे। सबका ध्यान आगन्तुककी ओर आकृष्ट हो गया था।

'आप सब श्रीशैलपर ही हैं।' दूरसे ही आगन्तुकने यात्रियोंकी थकावट, व्याकुलता तथा उत्सुकता समझ ली और आश्वस्त करनेके लिये बोला—'वनमें भटक जानेके कारण आप विपरीत दिशासे आये हैं। कुछ दूर आगे बढ़ते ही आपको शिखरकी ध्वजाके दर्शन होंगे।'

'भगवान् मल्लिकार्जुनकी जय!' यात्रियोंमें नवीन उत्साह आ गया। उन्हें यह पता नहीं लगा कि उनको मार्ग बताने जो कृपा करके पधारे थे, वे थे कौन और उत्साहके इन क्षणोंमें सहसा किधर अदृश्य हो गये!

चार पुरुषार्थ

(डॉ० श्रीकृष्णजी द० देशमुख)
[अनुवाद—श्रीमिलिन्दजी काले]

यह विषय जिसे हमें समझना है, बहुत बड़े विस्तारवाला है। अभ्युदय और नि:श्रेयस भारतीय संस्कृतिके दो प्रमुख अंग हैं। अभ्युदयमें प्रपंचके व्यावहारिक सुखोंका, वैभवका विचार है और नि:श्रेयसमें पारमार्थिक सुख और वैभवका दर्शन होता है। ये दोनों सुख और वैभव साथ-साथ प्राप्त हों, ऐसी आशा-आकांक्षा पुरातन समयसे भारतीय जीवनपद्धतिमें की गयी है। कठोपनिषद्‌में अभ्युदयको प्रेय और नि:श्रेयसको श्रेय कहा है। इसका अर्थ यह हुआ कि हम भारतीयोंका जीवन इन दोनों रंगोंसे भरा हो—ऐसी व्यवस्था, योजना स्पष्टरूपसे नजर आती है। इसी योजना या व्यवस्थाके अन्तर्गत चारों पुरुषार्थोंकी रचनाको समझना चाहिये।

ये चार पुरुषार्थ हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इनमेंसे धर्म और मोक्षका सम्बन्ध नि:श्रेयससे है और अर्थ एवं कामका सम्बन्ध अभ्युदयके साथ है। जो अर्थ पुरुषको प्राप्त करना है, उसे पुरुषार्थ कहते हैं। यहाँ पुरुष शब्द स्त्रीलिंग और पुल्लिग दोनोंके लिये है। यह बात पुरुष शब्दकी उत्पत्तिका विचार किये बिना समझमें नहीं आयेगी। **'पुरि शयनात् पुरुषः।'** पुर अर्थात् शहर और शहरमें रहनेवाला हुआ पुरुष। यह नौ द्वारोंवाला मानव-शरीर ही पुर माना गया है, जिसमें रहनेवाले जीवात्माको 'पुरुष' नाम दिया गया है। अत: स्त्री हो या पुरुष दोनोंमें जीवात्मा या पुरुष रहता है। ऐसा कोई भेद नहीं है कि पुरुषके शरीरमें रहनेवालेको आत्मा और स्त्रीके शरीरमें रहनेवालेको आत्मी कहेंगे। यदि शब्द और उसके पीछे रहनेवाली संकल्पना ठीकसे समझ लें तो वे शब्द भारी-भरकम नहीं लगते और इसलिये फिर उनका डर भी नहीं लगता। अब अर्थ शब्दको भी समझ लेते हैं। अर्थ शब्दके एक 'पैसा' और दूसरा 'मतलब' ऐसे दो अर्थ हैं। 'आपकी बातका क्या अर्थ है ?' इस प्रश्नवाचक वाक्यमें तीसरा अर्थ नजर आता है। 'आपकी बातके पीछे आपकी क्या भूमिका है' ऐसा ध्वन्यर्थ इस प्रश्नसे निकलता है, परंतु यहाँ (इस आलेखमें) अर्थ शब्दका अभिप्राय ऊपर बतलाये अर्थोंमेंसे कोई भी नहीं है। यहाँ अर्थ शब्दका मतलब है प्राप्तव्य, जो अर्जित करने जैसा है और जिसे अर्जित करना चाहिये—उसे ही यहाँ अर्थ कहा गया है। वही मनुष्य जन्मका वास्तविक ध्येय है। इस प्रकार चार पुरुषार्थ हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। यह शब्दक्रम-रचना बड़ी मार्मिक या मर्मस्पर्शी है। इसे देखते ही यह ध्यानमें आयेगा कि अर्थ और काम धर्म और मोक्षके बीच घिरे हुए हैं। यह क्रम निश्चित रूपसे हमें कुछ सूचित करता है कि अर्थ धर्मकी मर्यादामें होना चाहिये और धर्मकी मर्यादामें काम मोक्षके आड़े नहीं आता। ईमानदारीसे, लगनसे अभ्यास करनेवाले संवेदनशील साधकको ही यह महसूस होगा। हम सभी संवेदनशील तो जरूर हैं, लेकिन उसका उपयोग मान, अपमान, यश, अपयश-जैसी बातोंमें ही करते हैं। चार पुरुषार्थोंकी यह रचना आजकल भरभराकर गिर गयी है। इनमेंसे अर्थ और कामकी गुण्डागर्दी इतनी बढ़ गयी है कि अर्थने धर्मको और कामने मोक्षको हमारे जीवनकी सीमासे बाहर कर दिया है, जीवनसे दरबदर कर दिया है। उनका अगर फिरसे हम पुनर्निर्माण कर पायें तो यह एक बहुत बड़ा काम होगा।

आइये, अब हम इन चारों संकल्पनाओंके स्वरूपको समझ लें।

धर्म

हमें जो अर्थ ज्ञात है, उससे धर्म शब्दका मूल अर्थ बहुत अलग है। 'धर्म' शब्दके उच्चारणके साथ ही हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, इसाई आदि सम्प्रदायोंकी याद हमें आती है। भारतमें धर्म नामक संकल्पनाका जिस समय उदय हुआ, उस समय ये सम्प्रदाय मूलत: अस्तित्वमें ही न होनेके कारण धर्म शब्दपर हिन्दुत्व सम्प्रदायको अकारण ही थोप दिया गया है। यह जुड़ा हुआ अर्थ यद्यपि अभ्यागत है, फिर भी परिस्थितियाँ ऐसी हो गयी हैं कि उसे स्वीकार करनेके अलावा कोई चारा नहीं है। यदि हम उसे स्वीकार नहीं करते तो हमारी संस्कृतिका अस्तित्व खतरेमें पड़ जायगा।

किसी वस्तुके अपरिवर्तनीय गुणको उसका धर्म कहते हैं। उदाहरणके तौरपर बर्फको लें। ठण्डा होना बर्फका धर्म है। बर्फ ठण्डकके बिना रह नहीं सकती। अब इस उदाहरणसे मनुष्यका धर्म कौन-सा है—यह समझना सम्भव होगा। जिस बातमें मनुष्यका धर्म समाया है, वही बात अगर वह छोड़ दे तो उसकी मनुष्यता क्या बाकी बच पायेगी? लकड़ीके डण्डेसे बाँधे हुए रंगीन झण्डे धर्म नहीं होते। इन झण्डोंके बजाय डण्डोंपर ही आजकलके धर्म निर्भर रहते हैं। टकराहट डण्डोंका धर्म होनेके कारण उन डण्डोंसे एक-दूसरेके झण्डोंको फाड़ना भी उसी क्रममें आता है। रोटी, पैसा, दवाएँ और बन्दूक जब धर्म-प्रसारके साधन बनते हैं, तब ऐसे धर्म मनुष्यके लिये कलंक बन जाते हैं।

प्रश्न उठता है कि मनुष्यकी मनुष्यता सिद्ध करनेवाला धर्म कौन-सा है? इस सन्दर्भमें ऐतरेय-उपनिषद्में एक बोधकथा है—

ईश्वरने जब विश्वनिर्माणकी प्रक्रिया शुरू की, उस समय इन्द्रियोंके सूर्य आदि सूक्ष्म देवताओंका निर्माण किया, लेकिन उन्हें अपना कार्य करनेके लिये कोई स्थूल शरीर नहीं दिया था। तब वे सभी देवता ईश्वरके पास गये और उन्होंने स्थूल शरीरकी माँग की। उस समय ईश्वरने उन्हें एक गायका शरीर बनाकर दिखाया। उन देवताओंने उस गायके शरीरमें प्रवेशकर उसकी जाँच की। सूर्यदेवताने गायकी आँखसे बाहर झाँककर देखा तो उसे चारा, गौशाला और बैल (आहार, निद्रा, मैथुन)-के सिवा कुछ भी नजर नहीं आया। वे देवता तुरंत गायके शरीरसे बाहर निकले और उन्होंने ईश्वरसे अपनी नापसन्दगी जाहिर कर दी। फिर ईश्वरने उन्हें घोड़ेका शरीर दिखाया। उसकी आँखसे भी घास, तबेला और घोड़ीके सिवा कुछ दिखायी नहीं दिया। तब उन्होंने उस शरीरको भी अस्वीकार कर दिया। उसके बाद ईश्वरने उनके सामने मनुष्यका शरीर प्रस्तुत किया। उस देहमें प्रवेश करनेके बाद देवताओंको बहुत आनन्द हुआ और वे वहीं स्थिर हो गये। ईश्वरने देवताओंसे पूछा कि उन्होंने उस शरीरको क्यों पसन्द किया? उस समय देवताओंने जो उत्तर दिया, उसका सम्बन्ध धर्मसे है। उन्होंने कहा कि जिसने हमें निर्माण किया, उसका सच्चा स्वरूप जाननेका सामर्थ्य केवल इस शरीरमें है। यही इस शरीरका उद्देश्य है और वही उसका धर्म है। संत तुकारामने मनुष्यके शरीरको प्रकाशका मार्ग कहा है। बाकी सारे शरीर अँधेरेकी ओर ले जानेवाले मार्ग हैं। इस धर्मको साध्य करनेके लिये प्रारम्भिक तैयारीके रूपमें मनुष्यको आचरणके जो नियम बनाकर दिये हैं, उन्हें 'धर्मशास्त्र' कहा जा सकता है।

धर्म और धर्मशास्त्रका मुख्य अन्तर हमें समझ लेना चाहिये। धर्म साध्य होनेके लिये अन्तःकरण शुद्ध और शान्त होना आवश्यक है। पशुवत् जीवनके द्वारा यह बात असम्भव है। कम-से-कम पशु आहार, निद्रा और मैथुनके भरोसे तो जी सकता है। मनुष्यको इनके अलावा भी और बहुत कुछ आवश्यक होता है। ये आवश्यकताएँ यदि मर्यादाओंमें सीमित नहीं की गयीं तो मनुष्य पशुसे भी भयंकर हो जाता है। इन मर्यादाओंको धर्मशास्त्र कहते हैं।

वेदोंका कर्मकाण्ड और उपासनाकाण्ड धीरे-धीरे छोड़ देनेकी प्रक्रिया सन्तोंने बड़ी सावधानीसे पूरी की है, परंतु ज्ञानकाण्डका पूर्णतया जतन किया है। वैदिककालमें अग्नि, इन्द्र, सोम, सूर्य आदिकी उपासनाएँ की जाती थीं। उसके पश्चात् विष्णुसहस्रनाम और सगुणोपासनामें राम, कृष्ण, दत्तात्रेय, शिव आदिकी उपासनाएँ की जाने लगीं। उसके भी आगे नामकी उपासना सामने आयी। संत तुकाराम कहते हैं—

वेद अनंत चि बोलला। अर्थ इतुकाची साधला॥
विठोबासी शरण जावें। निजनिष्ठे नाम गावें॥

अर्थात् वेदोंमें बहुत कुछ कहा गया है, लेकिन उसका सार यही है कि ईश्वरकी शरणागतिमें जाना चाहिये और ब्रह्मस्वरूपका नामस्मरण करना चाहिये।

वेद साहित्य विपुल है। सर्वसामान्यद्वारा उसे समग्र रूपसे स्वीकार करनेकी सम्भावना आज नजर नहीं आती। उस वेद साहित्यमें और शास्त्रोंमें विविधता और मतमतान्तर भी बहुत है। केवल अनुभवी और जानकार लोगोंको ही उसके तात्पर्यके अनुसार उसकी तारतम्यता समझमें आती है।

परम्परासे चली आ रही धार्मिक विधियोंके उचित या अनुचित होनेके विवादमें न पड़ते हुए सन्तोंने जो विधि-निषेध हमें बतलाये हैं, उनका पालन करनेसे भी

चित्तशुद्धि हो सकती है। संत ज्ञानेश्वर कहते हैं—

विधिते पालित। निषेधातें गालीत। मज देऊनी जालीत कर्मफले॥

(ज्ञानेश्वरी १२। ७७)

अर्थात् जो भी करनेके लिये कहा गया है, उसका पालन करो और जो करनेसे मना किया गया है, उससे बचके रहो। इस प्रकार जीवनयापन करते हुए जो भी कर्मोंके फल प्राप्त हों, उन्हें ईश्वरको समर्पितकर जीवनको निर्बीज कर दो अर्थात् पुनर्जन्मके बीज नष्ट कर दो।

संत तुकारामने अपने अभंग (मराठी काव्यरचना)-में जो विधि-निषेध बतलाये हैं, वे इस प्रकार हैं—

तीन निषेध—

१. परस्त्रीकी कामना न करें।

२. पराये धनकी कामना न करें।

३. परनिन्दासे पूर्णतया बचें।

तीन विधि—

१. संत-वचनोंपर विश्वास रखकर उनके अनुसार आचरण करें।

२. जीवनकी प्रत्येक अवस्थामें नामस्मरण करें।

३. हमेशा सत्यकी राहपर चलें।

संत पूछते हैं कि 'उपरोक्त विधि-निषेधोंका पालन करनेसे किसीका क्या बिगड़ेगा?'

ऐसे अनुशासित जीवनको धार्मिक जीवन कहते हैं। धर्माचरणकी परम्परागत कल्पनामें बहिरंगका विचार अधिक है। टीका, माला, धोती, अँगरखा, टोपी, अँगोछा आदिका सम्बन्ध संस्कृतिके साथ अधिक है। विवाह, यज्ञोपवीत आदि संस्कार संस्कृति और धर्म दोनोंसे सम्बन्धित हैं। स्नान, सन्ध्या आदि कर्म यदि शास्त्रीय पद्धतिसे कर पायें तो वह एक अच्छी बात होगी, लेकिन यदि ये कर्म भी किन्हीं कारणोंसे सम्भव नहीं हों तो उसके लिये भी कलियुगके योग्य पर्याय संत तुकारामने बतलाया है। वे कहते हैं—

नामें स्नान-संध्या केले क्रियाकर्म।
त्याचा भवश्रम निवारिला॥

अर्थात् स्नान, सन्ध्या इत्यादि कर्म और अनेक धार्मिक विधियोंकी क्रिया केवल नामस्मरणसे पूर्ण हो सकती है। शायद इसके लिये लोगोंको कोई दिक्कत नहीं होगी।

धर्म शब्दका दूसरा अर्थ कर्तव्य है। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं—

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते॥

(गीता २। ३१)

अर्थात् स्वधर्मका विचार करनेपर भी तुम्हारा इस तरह डाँवाडोल होना उचित नहीं है। क्षत्रियके लिये युद्धसे श्रेयस्कर और धर्मयुक्त ऐसा दूसरा कल्याणकारी कुछ भी नहीं है।

क्षात्रवृत्तिके लिये जो कर्तव्य है, उसे ही यहाँ 'धर्म' कहा है। इस प्रकारसे कितने ही धर्म कर्तव्यके रूपमें हम सबके लिये बतलाये गये हैं। उदाहरणके रूपमें पितृधर्मको लें। मुझे दो संतानें हैं। उनके लिये सारी जिम्मेदारियाँ धर्म-कर्तव्य करना आवश्यक है। उन्हें अगर मैं नहीं करता तो मैं अधर्मी कहलाऊँगा। उनके शरीर और मनकी योग्य रीतिसे परवरिश की जा रही है या नहीं, इसे देखना मेरा धर्म है। मुझे मेरे धर्मका पालन करना होगा। पुत्रधर्म, पतिधर्म, समाजधर्म, व्यवसायधर्म, राष्ट्रधर्म इस तरह अनेक कर्तव्य मेरे लिये निश्चित किये गये हैं। उन्हें पूरा करनेसे कतराकर यदि मैं ईश्वरके सम्मुख खड़ा हो जाऊँ तो क्या ईश्वर मेरी ओर देखेंगे?'

पुत्रधर्म एक धर्म ही है। माता-पिताकी शक्ति और सामर्थ्यके अनुसार देखभाल करना इस धर्मका व्यावहारिक स्वरूप है। भक्त पुण्डलीककी कथा बतलाती है कि इस धर्मका पालन करनेके फलस्वरूप स्वयं भगवान् पाण्डुरंग प्रकट हुए थे। अपने पुत्रधर्मका पालन करनेके बजाय यदि मैं द्वारका, काशी, बदरीनाथके फेरे करता रहूँ तो उसे सिर्फ चक्कर लगाना ही कहना पड़ेगा। उसे तीर्थयात्राका स्वरूप नहीं मिल पायेगा।

ये सारे धर्म या कर्तव्य हमपर थोपे हुए नहीं हैं, बल्कि वे हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवनमें एक सुसूत्रता और सुसंबद्धताका निर्माणकर जनजीवनको सुखी, सम्पन्न और संतोषी बनानेके साधन हैं, लेकिन फिर वे बोझस्वरूप क्यों लगते हैं? इसका सिर्फ एक यही कारण है कि उसके लिये जो मनका दृढ़ निश्चय

चाहिये और जो कुछ त्याग करना पड़ेगा, उसकी हमें आदत नहीं रही। नयी और पुरानी पीढ़ीमें यही बड़ा फर्क है। पुरानी पीढ़ी बहुत अधिक संयमी थी। उनके संयम और दृढ़ निश्चयको कभी-कभी हठका स्वरूप मिल जाता था, जिसका उनसे सम्बन्धित लोगोंको कष्ट भी होता था। फिर भी इस कारणसे संयम और दृढ़ निश्चयकी आवश्यकता कम नहीं होती। 'तुम युद्ध करो' यह गीताका ध्रुवपद है। मोहवश अर्जुनका निश्चय विचलित हो गया था, इसलिये भगवान्‌ने उसे युद्ध करनेका उपदेश किया। यह बात अगर ध्यानमें रख पायें तो धर्म और कर्तव्य दोनोंमें कितनी एकरूपता है—यह बात सहज ही समझमें आयेगी। यही कर्तव्यके प्रति निष्ठा और सच्ची धर्मनिष्ठा जब हमें अपने बसकी बात नहीं लगती, तब हम धर्मके बाह्य उपचारोंमें खोकर धार्मिकताका दम्भ भरते हैं और उसकी भ्रामक खुशी मनाते हैं। इसे ही धर्मग्लानि कहते हैं।

देवताओंकी रुचि या पसन्द हमने पहलेसे तय कर रखी है। उससे हटकर अलग सोचनेकी हमारी तैयारी ही नहीं है। गणेशजीको दूर्वा और मोदक प्रिय हैं, शंकरजीको बेलपत्र और सफेद फूल चाहिये। विष्णु भगवान्‌को तुलसीकी माला पसन्द है। उनकी पसन्दके बारेमें हम पूरी उदारता बरतते हैं। जिस-जिस देवताको जो भी पसन्द हो, वे चीजें उन्हें अर्पण करनेका हम हरसम्भव प्रयत्न करते हैं, लेकिन ईश्वरकी वास्तविक पसन्द बहुत ही अलग है। भगवान् श्रीकृष्णको कौन-सी वस्तु सबसे प्रिय है? जिस बातके लिये ईश्वर अपने निर्गुण स्वरूपको छोड़कर सगुण रूप धारण करते हैं, वही वस्तु उसे सबसे अधिक प्रिय है—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

(गीता ४।८)

यही ईश्वरके प्रिय विषय हैं, लेकिन हमारा विचार कुछ इस तरहका होता है—

१. मुझे ईश्वर प्रिय है।

२. ईश्वरको धर्म प्रिय है।

३. लेकिन मैं धर्म निभा नहीं सकता।

तार्किक दृष्टिसे अगर देखें तो इसका सीधा अर्थ है कि जो ईश्वरको वास्तवमें प्रिय है, उसे मैं ईश्वरको न देते हुए ही स्वयंको भक्त कहना पसन्द करता हूँ। ईश्वर निर्गुणसे सगुण रूप धारण करता है। वह मेरी और आपकी ओर देखकर नहीं करता; क्योंकि हमारी वैसी योग्यता नहीं है। यह योग्यता क्यों और किस प्रकार नहीं है, इसका वर्णन भागवतकी एक कथामें मिलता है। संक्षेपमें वह कथा इस प्रकार है—बालकृष्ण और अन्य गोपाल यमुनानदीके तटपर गेंदके साथ खेल रहे थे। जब बालकृष्णने गेंद फेंकी तो वह यमुनामें जा गिरी। यमुनाके जिस दहमें गेंद गिरी थी, उसमें कालिय नामका एक भयानक नाग रहता था। जब जमीनपर गेंद कहीं नहीं मिली तो फिर केवल बालकृष्णने यमुनामें छलाँग लगा दी। कितना ही समय बीत गया, परंतु बालकृष्ण बाहर नहीं आये। गोपाल राह तकते थक गये। फिर उन्हें लगने लगा कि बालकृष्ण निश्चित ही डूब गया है। वे सारे रोते, चिल्लाते, काँपते गोकुल वापस गये और उन्होंने सारी हकीकत सब लोगोंको सुनायी। सभी लोग अत्यन्त दुखी हो गये। गोकुलमें कुहराम मच गया। छाती कूटकर रोते हुए सारे गोकुलवासी यमुनाके दहके पास पहुँचे, लेकिन कालियसे भयभीत होकर किसीने भी यमुनाके दहमें गोता लगाकर बालकृष्णको ढूँढ़नेका प्रयास नहीं किया। श्रीकृष्ण सारे गोकुलवासियोंका वास्तविक भाव समझ चुके थे। श्रीकृष्णने कहा कि उनका यह बर्ताव ठीक ही है; क्योंकि आखिर वे सब मनुष्य हैं। तात्पर्य यही है कि धर्मकी रक्षा करनेहेतु भगवान् श्रीकृष्ण अवतार लेते हैं। उन्हें धर्मके बारेमें गहरी आस्था है। मुझे अगर ईश्वर प्रिय है तो मुझे भी विवेकपूर्ण धर्मनिष्ठ जीवन व्यतीत करना चाहिये; क्योंकि ऐसे धार्मिक जीवनसे चित्तशुद्धि होती है। शुद्ध चित्तमें ही ईश्वरका सच्चा स्वरूप पहचाननेका और उसके साथ एकरूप होनेका सामर्थ्य होता है। इस धर्मशास्त्रका पालन किये बिना वास्तविक धर्मका लाभ नहीं होता। जबतक आत्मज्ञान हमारी सच्ची आवश्यकता नहीं बनता तबतक धर्म भी हमारी सच्ची जरूरत होना कठिन है। **[क्रमशः]**

[प्रेषिका—श्रीमती मुक्ता वाल्वेकर]

मनुष्य जन्मकी सार्थकता

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

विधाताने मनुष्यको अन्य योनियोंके प्राणियोंसे भिन्न, विशेष विभूतियाँ देकर उसकी रचना की है। यह हमारी अपनी पसन्द है कि हम पशु-योनिकी भाँति खायें-पीयें, सुख-दु:ख भोगें, विवश होकर जियें और जन्म-मरणके चक्रमें फँसे रहें अथवा विधाताद्वारा प्रदत्त विशेषताओंका सदुपयोग करके चिन्मय रसरूप अविनाशी जीवन प्राप्त करके अपने मनुष्य जन्मको सोद्देश्य (Purposeful) बनायें।

इसके लिये फिर हमें अपनेको 'मानव' स्वीकार करना होगा।' वस्तुत: मानव किसी आकृतिविशेषका नाम नहीं है। जो प्राणी अपनी निर्बलता एवं दोषोंको देखने और उन्हें निवृत्त करनेमें तत्पर है, वही वास्तवमें मानव कहा जा सकता है।

दूसरे शब्दोंमें 'जिस व्यक्तिमें मानवता है, वही मानव है।' मानवताके तीन लक्षण हैं—

(१) विचार, भाव और कर्मकी भिन्नता होते हुए भी स्नेहकी एकता (प्रेम)।

(२) अभिमानरहित निर्दोषता (त्याग)।

(३) अधिकारका त्याग एवं दूसरोंके अधिकारकी रक्षा (सेवा)।

व्यक्ति जिस समाजमें रहता है, उससे उसका अविभाज्य सम्बन्ध है, जिसका क्रियात्मक रूप ही व्यक्तिद्वारा समाजकी सेवा है—अर्थात् व्यक्ति अपने तीन विशिष्ट गुणोंद्वारा समाजकी सेवा कर सकता है—

(१) व्यक्तिकी निर्दोषतासे समाज निर्दोष होता है।

(२) स्नेहकी एकतासे संघर्षका नाश होता है।

(३) अपने अधिकारके त्याग और दूसरोंके अधिकारकी रक्षासे सुन्दर समाजका निर्माण होता है।

इन तीनोंद्वारा अपना भी कल्याण होता है।

मानवमें ही बीजरूपसे परम शान्ति, परम स्वाधीनता और परम प्रियताकी माँग विद्यमान रहती है। कर्तव्य-परायणताके बिना शान्ति नहीं मिल सकती, अपनेमें ही सन्तुष्ट हुए, अचाह हुए बिना स्वाधीनता नहीं मिलेगी और प्रियताके लिये नित्य विद्यमान, परमतत्त्व, प्रेम-स्वरूप ईश्वरको अपना आत्मीय मानना ही होगा, जो वह पहलेसे ही है।

मनुष्य जीवनका अपना महत्त्व है। इसे भूल जानेका ही यह परिणाम होता है कि व्यक्ति अपना मूल्यांकन सांसारिक उपलब्धियों, वस्तु, योग्यता, सामर्थ्य एवं परिस्थितिके आधारपर करने लगता है, जिससे वह इनकी दासतामें आबद्ध हो जाता है, जिसका परिणाम दु:ख और दारिद्र्य होता है। दरिद्र वही है, जिसमें लोभ है।

ऐसे सोचके आधारपर सभीका जीवन सार्थक हो ही नहीं सकता। सभी टाटा, बिड़ला, अम्बानी हो नहीं सकते; सभी राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री, मन्त्री, ऊँचे पदाधिकारी, बड़े वैज्ञानिक, इन्जीनियर, डॉक्टर आदि बन नहीं सकते। फिर तो अधिकांशको निराशा ही हाथ लगेगी और अपना जीवन व्यर्थ जान पड़ेगा।

जबकि वास्तविकता यह नहीं है। केवल जीवनके महत्त्व एवं उसकी सार्थकताके प्रति दृष्टिकोण सही करना है। वास्तवमे बड़े-छोटेका कोई प्रश्न ही नहीं है, हर व्यक्तिका जीवन सार्थक एवं उद्देश्यपूर्ण सिद्ध होगा। यदि हम यह देखें कि क्या हमने अपनेको उपयोगी बना लिया है। हम उपयोगी कैसे होते हैं—

(१) सेवाद्वारा संसारके लिये,

(२) त्यागद्वारा अपने लिये और

(३) प्रेमद्वारा प्रभुके लिये।

इसे अपनाकर अपनेको उपयोगी बनानेमें हम पूर्णतया समर्थ और स्वाधीन हैं। सेवा सेवा ही होती है, कोई बड़ी या छोटी नहीं होती। निकटवर्ती जन समाजकी यथाशक्ति क्रियात्मक सेवा करें और सद्भावद्वारा सभीकी भावात्मक सेवा करें।

अपनेको उपयोगी बनाना ही मनुष्य-जीवनकी सार्थकता है।

मानव-जीवनकी सार्थकता क्या है? पूजनीया माँ अमृतानन्दमयीके शब्दोंमें 'हम शरीर स्वस्थ रखनेके लिये व्यायाम करते हैं, लेकिन हृदयको व्यायाम देना भूल जाते हैं। हृदयका व्यायाम दु:खित और पीड़ित लोगोंको उनके स्तरसे उठानेमें, उनकी सेवामें है।'

'हमारी आँखोंकी सुन्दरता काजलकी रेखामें नहीं है, वरन् दूसरोंमें अच्छाई देखनेमें है और दु:खियोंके प्रति करुणामय दृष्टिमें है। कानोंकी सुन्दरता सोनेकी बालियोंमें नहीं वरन् दूसरोंका कष्ट धैर्यपूर्वक सुननेमें है। हमारे हाथोंकी सुन्दरता सोनेकी अँगूठी पहननेमें नहीं वरन् सत्कर्म करनेमें है।'

'हमें जीवनमें कृतज्ञताका भाव विकसित करना चाहिये, हम संसारके समस्त प्राणियोंके ऋणी हैं, जिन्होंने हमारे विकास और पोषणमें किसी-न-किसी रूपमें सहायता दी है और हमें इस अवस्थातक पहुँचाया है।'

'हमें अपने भाई-बहनोंकी दु:खभरी पुकार अनसुनी नहीं करनी चाहिये। जितना भी हो सके हमें उनका दु:ख कम करनेका प्रयत्न करना चाहिये। करुणा करनेके लिये कोई बड़े पद या बहुत धनकी आवश्यकता नहीं है। एक प्यारभरा शब्द, एक करुणाकारी दृष्टि, एक मुस्कान, कोई छोटी-सी सहायता किसी गरीबके जीवनमें प्रकाश ला सकती है और हमारे जीवनमें भी। हमारे जीवनका मूल्य इसमें नहीं है कि हमने क्या पाया, बल्कि इसमें है कि हमने क्या दिया। यदि हम किसी जीवको थोड़ी देर भी सुख दे सकें तो यह एक बड़ी उपलब्धि है।'

ऐसा ही उद्बोधन मेहेर बाबाका है—

'Real Happiness lies in making others Happy' (दूसरोंको प्रसन्नता प्रदान करनेमें ही अपनी सच्ची प्रसन्नता है।)

इस प्रकरणमें रवीन्द्रनाथ टैगोरकी एक छोटी कविता बहुत ही अर्थपूर्ण है—

'Who is there to take up my duties?'
asked the setting sun.
The world remained dark and silent
With joined palms said the earthen lamp,
'I will do what I can, my master!'

एक वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारीने अपने सहयोगियोंको सम्बोधित करते हुए टिप्पणी की—

It is not given to many of us to be a sun. But let us all, in our own modest way, at least try to be small earthen lamps and do the best we can.

जीवनकी सार्थकता यही तो है।

[प्रस्तुति—साधन-सूत्रः श्रीहरिमोहनजी]

चेतावनी

(पूज्य स्वामी श्रीपथिकजी महाराज)

ओ आने वालो इतना समझ लो, इस जग से तुमको जाना ही होगा।
यदि रह गई हैं कुछ वासनाएँ, उनके लिये फिर आना ही होगा॥ १॥
जब तक किसी पर अधिकार रखकर, जितना अधिक सुख तुम भोगते हो।
मानो न मानो जीवन में अपने, पुण्यों की पूँजी गँवाना ही होगा॥ २॥
दानाधिकारी बनकर किसी से, श्रद्धा के बाहर यदि धन लिया है।
तुम लेके देना भूलो भले ही, जो ऋण लिया वह चुकाना ही होगा॥ ३॥
जिससे किसी को दु:ख हो रहा हो, ऐसा असत् कर्म होने न पाये।
सुख के लिये जो दु:ख दे किसी को, उसको कभी दु:ख उठाना ही होगा॥ ४॥
तुम दूसरों को वह देते रहना, जो दूसरों से स्वयं चाहते हो।
जैसा भी दोगे वैसा प्रकृति से, कई गुणा तुमको पाना ही होगा॥ ५॥
कुछ जानना है तो अपने को जानो, मानना है तो प्रभु को ही मानो।
करना है तो सबकी सेवा करो तुम, जीवन किसी विधि बिताना ही होगा॥ ६॥
छोड़ो अहंता ममता जगत की, परमात्मा से ही प्रीति जोड़ो।
देखो पथिक तुम जिनकी शरण हो, उन पर तो विश्वास लाना ही होगा॥ ७॥

[प्रेषक—श्रीकुँवरसिंहजी]

भगवान् शंकरकी गोभक्ति

देवाधिदेव महादेव भगवान् शंकर 'पशुपति' कहे जाते हैं—'**पशूनां पतिं पापनाशं परेशं।**' उन्हें गौएँ इतनी प्रिय हैं कि वे गायोंके ही साथ रहते हैं। उनका वाहन वृषभराज नन्दी है, उन्होंने धर्मस्वरूप वृषभको ही अपनी ध्वजामें भी स्थान दिया है, इसीलिये वे 'वृषभध्वज' कहलाते हैं। भगवान् शंकरको तपस्या करना अतिप्रिय है और वे तपस्या भी गौओंके साथ रहकर ही करते हैं; क्योंकि गौएँ समस्त तपस्वियोंसे बढ़कर हैं—

गावोऽधिकास्तपस्विभ्यो यस्मात् सर्वेभ्य एव च॥
तस्मान्महेश्वरो देवस्तपस्ताभिः सहास्थितः।

(महा० अनु० ६६। ३७-३८)

भगवान् शंकर अपने भक्तोंको भी गौएँ प्रदान करते हैं। बाणासुरसे प्रसन्न होकर उन्होंने उसे बारह गौएँ दी थीं, जो समस्त सम्पत्तियोंकी शिरोमणि थीं। उषा-अनिरुद्धके विवाहमें बाणासुरने बहुत सारी दहेज-सामग्री भगवान् श्रीकृष्णको अर्पित की थी, परंतु भगवान् शंकरसे प्राप्त उन गौओंको उसने दहेजमें नहीं दिया था। भगवान् श्रीकृष्ण इस तथ्यको जानते थे, अतः उन्होंने उन गौओंकी माँग की, तब बाणासुरने भगवान् शंकरके कहनेपर उन्हें गौएँ समर्पित कर दीं।

भगवान् शंकरकी गोभक्ति अद्भुत है, उन्होंने स्वयं नीलवृषके रूपमें गोमाता सुरभिके गर्भसे अवतार लिया। स्कन्दपुराणके नागर-खण्डमें इसकी कथा इस प्रकार आती है—

एक बार भगवान् शंकरसे ब्रह्मतेजसम्पन्न ऋषियोंका कुछ अपराध हो गया, जिससे उनका सम्पूर्ण शरीर ब्रह्मतेजसे जलने लगा। इस शापानलसे त्रस्त होकर वे गोलोक गये और वहाँ गोमाता सुरभिका स्तवन करने लगे। शिवजीने कहा—

सृष्टिस्थितिविनाशानां कर्त्र्यै मात्रे नमो नमः॥
या त्वं रसमयैर्भावैराप्यायसि भूतलम्।
देवानां च तथा संघान् पितॄणामपि वै गणान्॥
सर्वैर्ज्ञात्वा रसाभिज्ञैर्मधुरास्वाददायिनी।
त्वया विश्वमिदं सर्वं बलस्नेहसमन्वितम्॥
त्वं माता सर्वरुद्राणां वसूनां दुहिता तथा।
आदित्यानां स्वसा चैव तुष्टा वाञ्छितसिद्धिदा॥
त्वं धृतिस्त्वं तथा तुष्टिस्त्वं स्वाहा त्वं स्वधा तथा।
ऋद्धिः सिद्धिस्तथा लक्ष्मीर्धृतिः कीर्तिस्तथा मतिः॥
कान्तिर्लज्जा महामाया श्रद्धा सर्वार्थसाधिनी।

अर्थात् सृष्टि, स्थिति और विनाश करनेवाली हे माता! तुम्हें बारम्बार नमस्कार है। तुम रसमय भावोंसे समस्त पृथ्वीतल, देवता और पितरोंको तृप्त करती हो। रसभिज्ञ सभीसे तुम परिचित हो और मधुर स्वाद देनेवाली हो। सम्पूर्ण चराचर विश्वको तुम्हींने बल और स्नेहका दान दिया है। देवि! तुम रुद्रोंकी माता, वसुओंकी पुत्री, आदित्योंकी बहन और सन्तोषमयी वाञ्छित देनेवाली हो। तुम्हीं धृति, तुष्टि, स्वाहा, स्वधा, ऋद्धि, सिद्धि, लक्ष्मी, धारणा, कीर्ति, मति, कान्ति, लज्जा, महामाया, श्रद्धा और सर्वार्थसाधिनी हो।

हे अनघे! मैं प्रणत होकर तुम्हारी पूजा करता हूँ। तुम विश्वदु:खहारिणी हो, मेरे प्रति प्रसन्न हो। हे अमृतसम्भवे! ब्राह्मणोंके शापानलसे मेरा शरीर दग्ध हुआ जा रहा है, तुम उसे शीतल करो।

इतना कहकर भगवान् शंकरने माता सुरभिकी परिक्रमा की और उनकी देहमें प्रवेश कर गये। गोमाता पवित्र ब्राह्मणोंका ही दूसरा रूप हैं, अतः उनका शाप गोमातापर प्रभावी नहीं हुआ और भगवान् शंकरके शरीरकी जलन शान्त हो गयी। माता सुरभिने उन्हें अपने गर्भमें धारण कर लिया। इधर शिवजीके न होनेसे सारे जगत्में हाहाकार मच गया। तब देवताओंने स्तवन करके ब्राह्मणोंको प्रसन्न किया और उनसे शिवजीका पता लगाकर वे गोलोक पहुँच गये। वहाँ उन्होंने सूर्यके समान तेजस्वी 'नील' नामक सुरभीसुतको देखा। वे सब जान गये कि सुरभीसुतके रूपमें भगवान् शिव ही

अवतरित हुए हैं। तब देवताओं और ऋषियोंने विविध प्रकारसे उनकी स्तुति की। ऋषियोंकी स्तुति सुनकर नीलवृषरूपी भगवान् शिव प्रसन्न हुए और उन्हें प्रणाम किया। फिर ब्राह्मणोंने नीलवृषरूप महेश्वरको वरदान दिया कि मृत प्राणीके एकादशाहके दिन नीलवृषभको शूल और चक्रसे अंकितकर गायोंके समूहमें छोड़ा जायगा। इससे जगत्का कल्याण होगा और देवता उसकी रक्षा करेंगे।

भगवान् शंकरकी गौओंके प्रति कितनी प्रीति और कितनी भक्ति है—इसकी एक कथा ब्रह्मपुराणमें आती है, जो इस प्रकार है—

प्राचीनकालमें जाबालि नामक एक कृषक ब्राह्मण था। वह मध्याह्न हो जानेपर भी अपने बैलोंको नहीं छोड़ता था, अपितु चाबुकसे उनके पृष्ठ और पार्श्वभागपर प्रहार करता रहता था। इस प्रकार उसके द्वारा पीड़ित और आँसूभरे नेत्रवाले बैलोंको देखकर जगन्माता कामधेनु गौने भगवान् शंकरके वाहन वृषभराज नन्दीसे अपने पुत्ररूप बैलोंकी इस करुण कथाको कहा। नन्दीने भी उन मूक पशुओंकी व्यथासे व्यथित होकर भगवान् शंकरसे उनका दु:ख निवेदित किया। इसे सुनकर भगवान् शंकरने नन्दीसे कहा कि तुम्हारी इच्छाओंके अनुसार ही कार्यसिद्धि होगी।

नन्दीने भगवान् शंकरकी आज्ञासे सम्पूर्ण गो-समूहको ही छिपा दिया। इस प्रकार गो-समूहके अदृश्य हो जानेपर स्वर्ग और मृत्युलोकमें खलबली मच गयी। देवताओंने शीघ्रतासे ब्रह्माजीके पास जाकर कहा कि गौओंके बिना हम सब कैसे जी सकते हैं? तब उन देवताओंसे ब्रह्माजीने कहा कि हे देवगण! आप सब भगवान् शंकरके पास जाओ और उनसे याचना करो।

ब्रह्माजीके कहनेके अनुसार सभी देवता शिवजीके पास गये और उनकी स्तुतिकर अपना अभिप्राय व्यक्त किया, तब भगवान् शंकरने उनसे कहा—हे देवगण! इस विषयको मेरा वृषभ नन्दी ही जानता है, अत: तुम सब उसीके पास जाओ और उसीसे निवेदन करो। देवताओंने नन्दीके पास जाकर कहा—हे नन्दिन्! हमें उपकारी गौओंको दे दो। इसपर नन्दीने कहा—देवताओ! आप लोग 'गोसव' नामक यज्ञ करें, तभी जितनी दिव्य और मर्त्यलोककी गौएँ हैं, वे प्राप्त हो सकती हैं। तदनन्तर देवोंने नन्दीके कहे अनुसार गोमतीके पवित्र कछारमें गोसव यज्ञका अनुष्ठान किया, जिससे गौओंकी संख्यामें पुन: वृद्धि होने लगी।

इस प्रकार भगवान् शंकरकी गोमाताके प्रति भक्ति और गोवंशके प्रति प्रेम सिद्ध होता है। वे माता पार्वतीसे गोभक्तिका उपदेश देते हुए कहते हैं—

हे देवि! गौओंके मल-मूत्रसे कभी उद्विग्न नहीं होना चाहिये और उनका मांस कभी नहीं खाना चाहिये। सदा गौओंका भक्त होना चाहिये। गौएँ परम पवित्र हैं, गौओंमें सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित हैं। अत: किसी तरह गौओंका अपमान नहीं करना चाहिये; क्योंकि वे सम्पूर्ण जगत्की माताएँ हैं—

गवां मूत्रपुरीषाणि नोद्विजेत कदाचन।
न चासां मांसमश्नीयाद् गोषु भक्त: सदा भवेत्॥
गाव: पवित्रं परमं गोषु लोका: प्रतिष्ठिता:।
कथंचिन्नावमन्तव्या गावो लोकस्य मातर:॥

(महा० अनु० अ० १४५)

इसी प्रकार ऋषियों, मुनियों, देवताओं और पितरोंको धर्म-सम्बन्धी रहस्य बताते हुए महादेवजी कहते हैं कि ब्रह्माजीके कहनेपर मैंने पहले सत्ययुगमें गौओंको अपने पास रहनेकी आज्ञा दी थी, इसलिये मेरी गौओंके झुण्डमें रहनेवाला वृषभ मुझसे ऊपर मेरे रथकी ध्वजामें विद्यमान है। मैं सदा गौओंके साथ रहनेमें ही आनन्दका अनुभव करता हूँ। अत: उन गौओंकी सदा ही पूजा करनी चाहिये—

मया ह्येता ह्यनुज्ञाता: पूर्वमासन् कृते युगे।
ततोऽहमनुनीतो वै ब्रह्मणा पद्मयोनिना॥
तस्माद् व्रजस्थानगतस्तिष्ठत्युपरि मे वृष:।
रमेऽहं सह गोभिश्च तस्मात् पूज्या: सदैव ता:॥

(महा० अनु० १३३। ६-७)

संतवाणी—

जीवनोपयोगी बातें

❀ यदि कुछ माँगते हुए भगवान्‌की भक्ति करोगे तो भगवान् उतना ही देंगे, जितना आपने माँगा है, परंतु यदि बिना माँगे (नि:स्वार्थ भावसे) भक्ति करोगे तो भगवान् इतना देंगे कि आपसे सँभाले नहीं सँभलेगा।

❀ ईश्वर हमें वह नहीं देता जो हमें अच्छा लगता है, अपितु वह देता है जो हमारे लिये अच्छा है।

❀ मनुष्यको केवल धर्म कमानेका प्रयत्न करना चाहिये; क्योंकि जहाँ धर्म (नारायण) है, वहाँ धन (लक्ष्मी) तो स्वत: आ जाता है।

❀ जिसका प्रभुमें दृढ़ विश्वास है, उसके लिये ज्योतिष आदि शास्त्रका कोई महत्त्व नहीं है; क्योंकि उसके तो तीनों काल (वर्तमान, भूतकाल एवं भविष्य) स्वयं भगवान् सँभालते हैं।

❀ किसी अभावग्रस्तको देखकर हँसो मत; क्योंकि लक्ष्मी कभी स्थिर नहीं रहती। कुएँसे जल निकालनेवाले रहटके घटोंको देखो, जो खाली होते जाते हैं, वे भरते जाते हैं तथा जो भरे हैं, वे खाली होते जाते हैं।

❀ अच्छा कार्य करनेवाले कई लोग मिल जायँगे पर बुरा कार्य न करनेवाले कम मिलेंगे। वास्तवमें करने योग्य कामकी अपेक्षा निषिद्ध कामका त्याग करना ज्यादा श्रेष्ठ है।

❀ जैसे सूर्यदेव उदयकाल और अस्तकाल दोनों ही समय रक्तवर्ण रहते हैं, उसी प्रकार मनुष्यको सुख-दु:ख और सम्पत्ति-विपत्तिमें एक-सा रहना चाहिये।

❀ दूसरोंके दोष जानते हुए भी उन्हें अन्य व्यक्तियोंके सामने प्रकट नहीं करना चाहिये।

❀ पराये धनका लोभ न करना, मर्यादाको कभी भंग न होने देना, नीचके संगसे दूर रहना, विपत्तिमें धैर्य रखना तथा सम्पत्तिमें विनीत होना—ये सब प्रसन्नताके निश्चित हेतु हैं।

❀ अधिक खर्चीली जीवन-शैली मनुष्योंको रुपयोंका दास बना देती है, जिससे कई प्रकारके पाप करने पड़ते हैं।

❀ विद्याहीन मनुष्य रूप एवं यौवनसे सम्पन्न तथा उच्चकुलीन होते हुए भी, विद्वानोंकी सभामें शोभा नहीं पा सकता।

❀ धनसे हीन लेकिन ज्ञानवान् मनुष्य कभी गरीब नहीं है, लेकिन वह धनवान् जिसके पास ज्ञान नहीं है, हर तरहसे गरीब है।

❀ यह निश्चित है कि जो हमारे सामने दूसरोंकी निन्दा करता है, वह दूसरोंके सामने हमारी निन्दा करेगा। इसलिये दूसरोंकी निन्दा और गलतियोंको सुननेमें अपना समय नष्ट मत करो।

❀ सम्पत्ति, संतान और विद्या—इनकी प्राप्तिके बाद मनुष्यको सावधान रहना चाहिये; क्योंकि इनकी प्राप्तिसे अहंकार बढ़ जाता है।

❀ अपनी अज्ञानताका अहसास होना ज्ञानकी दिशामें बढ़नेहेतु एक बड़ा कदम है।

❀ उपकारसे बढ़कर कोई धर्म नहीं तथा अपकारसे बढ़कर कोई पाप नहीं।

❀ अभिमान मनुष्यको कभी उठने नहीं देता तथा स्वाभिमान मनुष्यको कभी गिरने नहीं देता।

❀ अधर्मसे मनुष्य पहले तो एक बार बढ़ता है और अपने छोटे-मोटे शत्रुओंपर धनके बलसे विजय भी प्राप्त कर लेता है, किंतु अन्तमें वह देह, धन, संतान और परिवारसहित समूल नष्ट हो जाता है।

❀ मोक्षप्राप्तिमें वर्ण, आश्रम एवं जातिकी प्रधानता बिलकुल नहीं है अपितु सद्‌गुण, सदाचार, ईश्वर-भक्ति एवं ज्ञान ही प्रधान हैं।

❀ संतानको सम्पत्तिके साथ संस्कार भी दीजिये; क्योंकि सुसंस्कारित संतान ही सम्पत्तिका सदुपयोग कर सकती है।

❀ जीवनमें आनेवाले दु:खको समस्या मत समझो बल्कि इसे जीवनकी तपस्या समझकर स्वीकार करो।

[प्रस्तुति—डॉ० श्रीओमप्रकाशजी वर्मा]

साधनोपयोगी पत्र

(१)

दुःखोंसे छूटनेके उपाय

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला था। आपने पत्रमें अपनी आर्थिक, शारीरिक और मानसिक स्थितिके बारेमें लिखा, सो सब पढ़ा। आर्थिक स्थिति अच्छी न रहनेके कारण चित्तमें अशान्ति होना स्वाभाविक है। आजकलकी दुनियामें अर्थके बिना कोई काम नहीं सधता, बात-बातमें अर्थकी जरूरत होती है। ऐसी हालतमें अर्थका अभाव क्लेशदायक होगा ही। परन्तु प्रारब्धके विधानके सामने हम क्या कर सकते हैं?

यथासाध्य उपाय करना चाहिये, सो आप कर ही रहे हैं। उद्योग करनेपर फल नहीं होता, तब सिवा सन्तोषके सुखका और कोई साधन नहीं है। ऋणकी बात भी जरूर बहुत संकट देनेवाली है। इसको उतारनेके लिये यथासाध्य आप उद्योग करते ही हैं। ऋण होनेपर अनाप-शनाप खर्च करना या धन होनेपर भी न देनेका भाव नहीं होना चाहिये। और साधारण खर्चके बाद यदि कुछ बचे तो उसे ऋण-दाताओंको देना चाहिये, परंतु एक बात स्मरण रखनी चाहिये। यदि साधन करनेपर भगवत्कृपासे भगवत्प्राप्ति हो गयी तो इसी ऋणसे नहीं—समस्त ऋणोंसे जीवको मुक्ति मिल जाती है। अतएव यह कभी नहीं विचारना चाहिये कि पूरा ऋण उतर जानेपर और स्त्री-पुत्रोंके भरण-पोषणके लिये कुछ संग्रह हो जानेपर या अच्छी कमायी होने लगनेपर ही भजन किया जायगा। प्रथम तो यह निश्चय नहीं कि तीनों बातें पूरी होंगी ही। दूसरे यह भी पता नहीं कि यदि ये पूरी हो भी गयीं तो फिर उस समय भजन करनेका मन रहेगा या नहीं। यह याद रखना चाहिये कि एक-एक अभावकी पूर्ति पचासों नये-नये अभावोंको उत्पन्न करनेवाली होती है। मन रहा भी और शरीर पहले छूट गया तो अपनेको क्या लाभ हुआ? अतएव भजन तो हर हालतमें करना ही चाहिये, साथ ही ऋण चुकाने तथा आजीविकाका साधन संग्रह करनेके लिये चेष्टा भी करते रहना चाहिये। भजनके साथ-साथ ऋण चुक गया तब तो दोनों काम हो गये, नहीं तो भजन हुआ। भजनके प्रतापसे इसी जन्ममें भगवत्प्राप्ति हो गयी, तब तो सारा बखेड़ा ही तै हो गया; ऐसा न हुआ तब भी जितना भजन हुआ, उतना तो हमारे कल्याणका मार्ग प्रशस्त हुआ ही। जितना रास्ता कटा, उतना ही अच्छा। एक बात और ध्यानमें रखिये।

जिन लोगोंके पास काफी धन है, ऋणकी तो कोई बात ही नहीं, भोगके लिये प्रचुर सामग्री मौजूद है, उनके चित्तमें भी शान्ति धनके होने-न-होनेसे सम्बन्ध नहीं रखती। शान्तिका सम्बन्ध चित्तकी वृत्तियोंसे है। जिसके मनमें कामना, आसक्ति, ममता और अहंकार है, वह चाहे जितना धनी क्यों न हो, कभी शान्ति नहीं पा सकता। वह सदा जला ही करता है। इसके विपरीत जो बिलकुल निर्धन है, परन्तु भगवान्‌में विश्वासी है, भगवान्‌का भजन करता है और भगवान्‌के प्रत्येक विधानमें मंगलमय भगवान्‌का हाथ देखकर अपना मंगल देखता है, वह महान्-से-महान् दुःखकी हालतमें भी शान्त और सुखी रहता है। बलि राजाका राज्य हरण कर लेनेपर भगवान्‌से प्रह्लादने कहा था—'भगवन्! आपने बड़ी दया की।' अतएव आपको विचार करके आर्थिक स्थितिके कारण चित्तमें दुःख नहीं करना चाहिये, भगवान्‌का विधान मानकर सन्तुष्ट रहना चाहिये। और जहाँतक हो सके, उपार्जनकी शुद्ध चेष्टा करते हुए कम खर्चमें काम चलाना चाहिये। सब दुःखोंके नाशके लिये एकमात्र उपाय बतलाता हूँ। मनमें यह निश्चय करके कि 'हे भगवन्! मैं एकमात्र आपके ही शरण हूँ। आप ही मुझे दुःखोंसे बचायेंगे यह मुझको निश्चय है।' चलते-फिरते, उठते-बैठते मन-ही-मन सदा **'हरिः शरणम्'** मन्त्रका जप करते रहिये। यदि विश्वास और श्रद्धापूर्वक इसका जप किया जाय तो सारे संकट टल सकते हैं। इसके सिवा भागवतके आठवें स्कन्धके तीसरे अध्यायका रोज सबेरे आर्तभावसे पाठ कीजिये। इससे भी बहुत लाभ हो सकता है।

भगवान्‌की सुन्दर तसवीर सामने रखकर उनके एक-एक अंगके ध्यानका अभ्यास कीजिये तथा श्वासके साथ भगवान्‌के नामका जप करनेकी आदत डालिये। श्वासके आने-जानेमें जो शब्द होता है, उसपर लक्ष्य कीजिये।

जरा जोरसे श्वास लीजिये तो आवाज स्पष्ट सुनायी देगी। उस आवाजमें ऐसी भावना कीजिये कि यह 'राम-राम' बोल रहा है। ऐसा करनेसे मन कुछ वशमें होगा। शरीर, भोग सब क्षणभंगुर, विनाशी तथा दु:खरूप हैं—ऐसी भावना करके मानसिक पापोंको हटाइये। मानसिक पापोंके नाशके लिये आर्तभावसे भगवान्से प्रार्थना करनी चाहिये। शारीरिक रोगनाशके लिये यथासाध्य ब्रह्मचर्यका पालन, खान-पानमें संयम रखते हुए साधारण आयुर्वेदिक दवा लेनी चाहिये। पेटकी वायुके नाशके लिये भोजनके पहले ग्रासके साथ चार आनेभर हिंग्वाष्टक चूर्ण घीमें मिलाकर लेना चाहिये। भोजनके बाद लवणभास्कर चूर्ण ठण्डे जलके साथ लेना चाहिये और धातु-क्षीणताके लिये आठ आनेभर आँवलेके चूर्णकी फंकी रातको सोते समय जलके साथ लेनी चाहिये। रोज तीन-चार मील घूमना चाहिये।

इस प्रकार श्रद्धापूर्वक साधन करनेसे भगवत्कृपासे आपकी शारीरिक, मानसिक और आर्थिक स्थितिमें बहुत कुछ उत्तम परिवर्तन हो सकता है। शेष प्रभुकृपा।

(२)

धर्म और भगवान्

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिल गया था। मैं समयपर जवाब न दे सका। माफ कीजियेगा। आप मुसलमान हैं, इसीलिये मेरे मनमें आपके प्रति मुहब्बत कम क्यों होती?

मुहब्बतसे, और इन हिंदू-मुसलमान नामोंसे क्या सरोकार? लेकिन अफसोस तो यह है कि आज हम इस हालतपर पहुँच गये हैं कि एक-दूसरेपर सन्देह करने लगे हैं और इसीसे ऐसे सवाल भी मनमें पैदा होते हैं। आपने इसलामका बड़ा ही सुन्दर अर्थ किया है। आपका यह अर्थ यदि भारतीय मुसलमान भाई जानते या मानते, उनके हृदयोंमें काश, यह अर्थ आ जाता तो आज जहाँ एक-दूसरेके गलेपर छूरी चलायी जाती है, वहाँ एक-दूसरेके हाथ परस्पर रक्षा करनेके लिये छत्र-छायाकी तरह ऊपरको उठे होते, और फिर क्या मजाल कि कोई तीसरा हममें भेद उत्पन्न करके लड़ा सकता, परन्तु आज तो जमाना ही बदल गया है। हमने ईश्वरके और धर्मके नामपर ही ईश्वर और धर्मकी हत्या करना शुरू कर दिया है। पता नहीं, इसका क्या नतीजा होगा!

ईश्वर एक हैं, धर्म उनकी प्राप्तिके रास्ते हैं। वे धर्म धर्म नहीं, जो ईश्वरप्राप्तिके रास्तेमें रोड़े अटकायें। सच्ची बात तो यह है कि एक ही भगवान्को हमलोग भिन्न नामोंसे पूजते हैं। हमारे श्रीकृष्ण ही आपके अल्लाह हैं। मजहबके नामों और देशकी सीमाओंके भेदसे न तो भगवान् अनेक हो जाते हैं और न अखण्ड आत्माके स्वरूपमें ही अन्तर आ सकता है। यह तो मनुष्यकी हठधर्मी है, जो वह अपना अज्ञान ईश्वरपर लादकर ईश्वरको छोटे दायरेमें कैद करना चाहता है। भगवान् सबको सुमति दें। यही प्रार्थना है······। शेष प्रभुकृपा।

(३)

गम्भीरता या प्रसन्नता

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। पत्र मिला, धन्यवाद! निवेदन यह है कि एक ऐसी भी आध्यात्मिक स्थिति होती है और वह अच्छी होती है, जिसमें अन्तरमें उदासी न होनेपर भी चेहरेपर उदासी-सी मालूम होती है। यह वैराग्यकी एक अवस्था है, परंतु चेहरेकी उदासी और गम्भीरता ही आध्यात्मिक उन्नति या स्थितिकी पहचान नहीं है। गम्भीरता होनी चाहिये भीतर, इतनी कि जो किसी भी प्रकारसे किसी भी बाह्य परिस्थितिमें चित्तको क्षुब्ध न होने दे। बाहर तो सदा प्रसन्नता और हँसी ही होनी चाहिये। समुद्रका अन्तस्तल कितना गम्भीर होता है, उसमें कभी बाढ़ आती ही नहीं, परंतु उसके वक्ष:स्थलपर असंख्य तरंगें नित्य-निरन्तर नाचती रहती हैं—अठखेलियाँ करती रहती हैं। इसी प्रकार हृदय विशुद्ध, विकाररहित, स्थिर, गम्भीर और भगवत्संयोगयुक्त होना चाहिये और बाहर उनकी विविध लीलाओंको देख-देखकर पल-पलमें परमानन्दमयी हँसीकी लहरें लहराती रहनी चाहिये। मुर्दे-सा मुर्झाया हुआ मुँह किस कामका? जिसे देखते ही देखनेवालोंका भी हृदय हँस उठे, मुखकमल खिल उठे, मुखमुद्रा तो ऐसी ही होनी चाहिये।

इसका यह अर्थ भी नहीं कि विनोदके नामपर मर्यादारहित, अनर्गल, असत्य प्रलाप किया जाय। उसका तो त्याग ही इष्ट है। शेष प्रभुकृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

संं० २०७३, शक १९३८-३९, सन् २०१७, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-वसन्त-ऋतु, चैत्र कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ७।४४ बजेतक	सोम	उ० फाल्गुनी सायं ५।४६ बजेतक	१३ मार्च	**वसन्तोत्सव (होली)।**
द्वितीया ,, ८। ३५ बजेतक	मंगल	हस्त रात्रिमें ७। ९ बजेतक	१४ ,,	**मीन-संक्रान्ति** रात्रिमें ७। ४५ बजे, **खरमासारम्भ, वसन्तऋतु प्रारम्भ।**
तृतीया ,, ९। ५१ बजेतक	बुध	चित्रा ,, ८।५८ बजेतक	१५ ,,	**भद्रा** दिनमें ९। १२ बजेसे रात्रिमें ९। ५१ बजेतक, **तुलाराशि** दिनमें ८। ३ बजेसे।
चतुर्थी ,,११।३२ बजेतक	गुरु	स्वाती ,,११। १० बजेतक	१६ ,,	**संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ९। २८ बजे।
पंचमी ,, १।३१ बजेतक	शुक्र	विशाखा ,, १।३८ बजेतक	१७ ,,	**वृश्चिकराशि** रात्रिमें ७। १ बजेसे।
षष्ठी ,, ३।३८ बजेतक	शनि	अनुराधा ,, ४।१६ बजेतक	१८ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ३। ३८ बजेसे, **मूल** रात्रिमें ४। १६ बजेसे।
सप्तमी रात्रिशेष ५। ४२ बजेतक	रवि	ज्येष्ठा अहोरात्र	१९ ,,	**भद्रा** दिनमें ४। ४० बजेतक, **भानुसप्तमी।**
अष्टमी अहोरात्र	सोम	ज्येष्ठा प्रातः ६।५० बजेतक	२० ,,	**धनुराशि** प्रातः ६।५० बजेसे, **सायन मेषराशिका सूर्य** सायं ६। १६ बजेसे।
अष्टमी प्रातः ७।३२ बजेतक	मंगल	मूल दिनमें ९।१२ बजेतक	२१ ,,	**शुक्रास्त** पश्चिममें रात्रिमें १०। २३ बजे, **मूल** दिनमें ९। १२ बजेतक।
नवमी दिनमें ९।६ बजेतक	बुध	पू० षा० ,,११।१७ बजेतक	२२ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ९। ३९ बजेसे, **मकरराशि** सायं ५। ४१ बजेसे, शक-संवत् १९३९ प्रारम्भ।
दशमी ,, १०।१० बजेतक	गुरु	उ० षा० ,, १२।५३ बजेतक	२३ ,,	**भद्रा** दिनमें १०। १० बजेतक।
एकादशी ,, १०।४७ बजेतक	शुक्र	श्रवण ,, २।१ बजेतक	२४ ,,	**कुम्भराशि** रात्रिमें २। २१ बजेसे, **पापमोचनी एकादशीव्रत (सबका), पञ्चकारम्भ** रात्रिमें २। २१ बजे।
द्वादशी ,, १०।५३ बजेतक	शनि	धनिष्ठा ,, २।४१ बजेतक	२५ ,,	**शनिप्रदोषव्रत, शुक्रोदय** पूर्वमें दिनमें २। २ बजे।
त्रयोदशी ,,१०।२८ बजेतक	रवि	शतभिषा ,, २।५० बजेतक	२६ ,,	**भद्रा** दिनमें १०। २८ बजेसे रात्रिमें १०। १ बजेतक।
चतुर्दशी ,, ९।३३ बजेतक	सोम	पू० भा ,, २।३१ बजेतक	२७ ,,	**मीनराशि** दिनमें ८। ३५ बजेसे, **श्राद्धकी अमावस्या।**
अमावस्या ,, ८।१३ बजेतक	मंगल	उ० भा० ,, १।४७ बजेतक	२८ ,,	**भौमवती अमावस्या, मूल** दिनमें १। ४७ बजेसे।

संं० २०७४, शक १९३९, सन् २०१७, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, चैत्र शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा प्रातः ६। ३२ बजेतक	बुध	रेवती दिनमें १२।४४ बजेतक	२९ मार्च	**मेषराशि** दिनमें १२।४४ बजेसे, **पंचक समाप्त** दिनमें १२।४४ बजे, **वासन्तिक नवरात्रारम्भ, 'साधारण' संवत्सर।**
तृतीया रात्रिमें २।२१ बजेतक	गुरु	अश्विनी ,,११।२४ बजेतक	३० ,,	**मत्स्यावतार, गणगौर, मूल** दिनमें ११। २४ बजेतक।
चतुर्थी ,, १२।० बजेतक	शुक्र	भरणी ,, ९।५४ बजेतक	३१ ,,	**भद्रा** दिनमें १।११ बजेसे रात्रिमें १२।० बजेतक, **वृषराशि** दिनमें ३।२९ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, रेवतीका सूर्य** दिनमें २।२९ बजे।
पंचमी ,,९।३६ बजेतक	शनि	कृत्तिका ,, ८। १५ बजेतक	१ अप्रैल	× × × ×
षष्ठी ,, ७।११ बजेतक	रवि	रोहिणी प्रातः ६। ३३ बजेतक	२ ,,	**मिथुनराशि** सायं ५।४५ बजेसे।
सप्तमी सायं ४।५२ बजेतक	सोम	आर्द्रा रात्रिमें ३। २७ बजेतक	३ ,,	**भद्रा** सायं ४।५२ बजेसे रात्रिमें ३।४८ बजेतक।
अष्टमी दिनमें २।४४ बजेतक	मंगल	पुनर्वसु ,, २।११ बजेतक	४ ,,	**कर्कराशि** रात्रिमें ८। ३० बजेसे, **श्रीदुर्गाष्टमीव्रत।**
नवमी ,,१२।५१ बजेतक	बुध	पुष्य ,, १। १३ बजेतक	५ ,,	**श्रीरामनवमीव्रत, मूल** रात्रिमें १। १३ बजेसे।
दशमी ,, ११।१८ बजेतक	गुरु	आश्लेषा ,, १२। ३५ बजेतक	६ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १०। ४४ बजेसे, **सिंहराशि** दिनमें ११। १८ बजेसे।
एकादशी ,, १०। ९ बजेतक	शुक्र	मघा ,, १२। २१ बजेतक	७ ,,	**भद्रा** दिनमें १०। ९ बजेतक, **कामदा एकादशीव्रत (सबका), मूल** रात्रिमें १२। २१ बजेतक।
द्वादशी ,, ९। २३ बजेतक	शनि	पू० फा० ,,१२।३६ बजेतक	८ ,,	**शनि प्रदोषव्रत, वामनद्वादशी।**
त्रयोदशी ,, ९।८ बजेतक	रवि	उ० फा० ,,१।२० बजेतक	९ ,,	**कन्याराशि** प्रातः ६। ४६ बजे, **श्रीमहावीर-जयन्ती।**
चतुर्दशी ,, ९। २५ बजेतक	सोम	हस्त ,,२।३६ बजेतक	१० ,,	**भद्रा** दिनमें ९। २५ बजेसे रात्रिमें ९। ५० बजेतक, **व्रत-पूर्णिमा।**
पूर्णिमा ,, १०। १५ बजेतक	मंगल	चित्रा रात्रिशेष ४।२० बजेतक	११ ,,	**तुलाराशि** दिनमें १०। ४० बजेसे, **पूर्णिमा, श्रीहनुमत्-जयन्ती।**

कृपानुभूति

'स्वप्नमें दिया महादेवने आदेश—जो साकार हुआ'

इस घटनाका सिलसिला तो लगभग चालीस वर्ष पूर्वसे ही आरम्भ हो जाता है, जब हमारे समधीसाहब श्रीगोकुलचन्द शर्मा परिवारसहित हरिद्वार गये हुए थे। जिस दिन उनको नीलकण्ठमहादेवके दर्शन करने जाना था, उसी दिन प्रातः जगनेसे पहले उन्हें स्वप्न हुआ कि वे दर्शन करने जा रहे हैं, रास्तेमें उनके आगे-आगे तीन साधु चले जा रहे हैं। थोड़ी दूर आगे जाकर उनमेंसे दो साधु क्रमशः दायीं एवं बायीं दिशाको मुड़ते हुए अदृश्य हो जाते हैं, पर तीसरा साधु उनके सामने आकर खड़ा हो जाता है और कहता है—'तुम हमारे पीछे-पीछे क्यों चले आ रहे हो?'

शर्माजीने कहा—वैसे ही महाराज! चरणधूलि मिल जाय, इस इच्छासे।

साधुने कहा—'अच्छा! तो एक काम करो।' तब उन्होंने कहा—'फरमाइये महाराज' (आज्ञा कीजिये)। तब एकाएक वे साधु चन्द्रमौलि, त्रिशूल-डमरू धारण किये भगवान् शिवशंकरके स्वरूपमें परिणत हो गये और बोले—'दीर्घकालसे मेरे मन्दिरके ऊपर छत नहीं है। तुम उसकी छत डलवा दो।' इसके पश्चात् स्वप्न टूट गया, लेकिन वह स्वरूप उनकी आँखोंमें तथा वे शब्द उनके कानोंमें गूँजते रहे।

तब अपने कारोबारकी व्यस्तताके चलते भी वे मन्दिरकी खोजमें लगे रहे। आठ वर्षतक वे इसी उधेड़-बुन और छानबीनमें लगे रहे, परंतु उन्हें ऐसा मन्दिर कहीं नहीं मिल पा रहा था, जिसकी छत न हो। उपास्यके आदेशको भी नकारा नहीं जा सकता था। परेशान होकर उन्होंने प्रार्थना की—'प्रभो! आदेश दिया है तो मार्ग-दर्शन भी करो।' तब एक विचित्र संयोग बना, जिसमें बीकानेरक्षेत्र (राजस्थान)-में रेलवे लाइनके पास गंगाशहर रोडपर वह मन्दिर दर्शाया गया। तब बीकानेरमें उसी स्थानपर जाकर उन्होंने देखा—'गोपेश्वर महादेव' का मन्दिर, उस प्राचीन मन्दिरके विशाल परिसरमें अन्य कमरे-बरामदे आदि तो थे, परंतु जिस स्थानपर शिवजी स्वयं शिवलिंगके रूपमें विराजमान थे, उसकी छत नहीं थी। केवल छोटी-छोटी चहारदीवारी ही थी। अनेक वर्षोंसे वहाँ खुलेमें ही विधिवत् पूजा-अर्चना होती चली आ रही थी।

तब उन्होंने मन्दिरकी कमेटीके मुखिया लोगोंके सामने अपना उद्देश्य रखा, परंतु वे लोग उनसे सहमत नहीं हुए; क्योंकि चिरकालसे वहाँके लोगोंमें यह धारणा थी कि जो कोई इस मन्दिरकी छत बनवाता है, वह नष्ट हो जाता है अथवा छत गिर जाती है। जिस कारण राजस्थानके राजा-महाराजा भी छत बनवानेका साहस नहीं कर सके। अतः इस विचारधाराकी अड़चनसे उन्हें बहुत प्रयत्न करनेपर भी छत डलवानेकी आज्ञा नहीं मिली।

अन्तमें शर्माजी श्रीगंगानगर (राजस्थान) गये, वहाँ अपने मित्र श्रीराधेशामजीसे मिले, जो उस समय तत्कालीन सरकारमें विधायक थे, तब श्रीराधेशामजीने मन्दिर ट्रस्टको विश्वास दिलाया कि ये कोई करोड़पति व्यक्ति नहीं हैं और न ही इसमें इनका कोई अपना स्वार्थ है, ऐसा होता तो ये इतनी दूर अनभिज्ञ स्थानकी बजाय अपने प्रान्त हरियाणा अथवा निवास चरखी दादरीमें ही क्यों न मन्दिर बनवा लेते? इन्हें भगवान् शिवका आदेश पालन करनेकी आज्ञा प्रदान करनी चाहिये, तब वहाँ उपस्थित स्थानीय सज्जन श्रीपुरोहितजीने भी उनका अनुमोदन किया। तत्पश्चात् शर्माजीने मन्दिरकी हानि-लाभका दायित्व अपने ऊपर लेते हुए छत बनवानेकी अनुमति प्राप्त कर ली।

तदुपरान्त मन्दिरपर अति भव्य गगनचुम्बी गुम्बद बनकर शोभायमान हो गया। गुम्बद (छत)-निर्माणकी सम्पन्नताके उपलक्ष्यमें सन् १९८३ ई० के जुलाई मास (श्रावणमास)-में उद्घाटन-समारोहका आयोजन किया गया। जिस दिन उद्घाटन होना था, उससे पहली रात्रिको बीकानेरमें प्रचण्ड तूफान आ गया। तूफानकी भयंकरताको देखते हुए रात्रिके अन्धकारमें लोग काँप रहे थे कि कहीं इसका कारण मन्दिरकी छत डालना तो नहीं? कुछ लोग शर्माजीको कोस रहे थे; क्योंकि उन्होंने उन लोगोंकी मान्यताके विरुद्ध कार्य किया था। जो भी हो, छत ढह जानेकी प्रबल आशंका थी। बवण्डर थमा, दिन निकला, लोगोंने बाहर निकलकर देखा, दुकानोंकी छतें उड़ गयी थीं, पेड़ ढह गये थे, परंतु महादेवके मन्दिरका मनोहर गुम्बद सुनहरे कलशका मुकुट पहने मानो कह रहा था—'मैं गिरा नहीं हूँ, वे प्रलयंकार शिव तो रातको मुझपर अपनी स्वीकृतिकी मुहर लगाने आये थे।'

इस समारोहमें शर्माजीके निकट सम्बन्धियोंमें मैं भी सम्मिलित थी। मैंने सब अपनी आँखोंसे देखा, सबसे विचित्र दृश्य तो यह था कि उससे पहले दिन गुम्बदपर अन्तिम चित्रकारी करके जो कारीगर देर शामको नीचे उतरे थे, वे एक खाली बाल्टी एवं रंगकी कूची ऊपर छोड़ आये थे, वह भी गिरी नहीं, ज्यों-की-त्यों पड़ी थी।

ईश्वरकी सत्ताका पार किसने पाया है? वह कब, किससे, क्यों और क्या करवाता है, यह ईश्वर ही जानता है।—**चन्द्रकला शर्मा**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

आँखों देखा चमत्कार

मैं स्वयं एलोपैथीका प्रशिक्षित रजिस्टर्ड चिकित्सक हूँ। पिछले बीस वर्षोंसे कुष्ठकी बहुऔषधि उपचार-प्रणाली एवं कई जिलोंकी कुष्ठनियन्त्रण इकाईका प्रभारी रहा हूँ।

आधुनिक वैज्ञानिक तथ्योंके अनुसार कुष्ठ एक जीवाणु-जन्य रोग है। यह माइको बैक्टीरियम लेप्री नामक जीवाणुसे होता है। यह रोग शरीरपर देहके रंगसे फीके दागसे प्रारम्भ होकर तन्त्रिकाओंको नुकसान पहुँचाने, हाथ-पैरोंकी अंगुलियोंके संवेदनशील हो जाने, लगातार चोट लगने, जल जाने, कट जानेसे हाथ-पैरोंमें आयी स्थायी विकृतियों, नाकके बैठ जाने, आँखोंकी भौहोंके उड़ जाने आदिके कारण बेहद कुरूप-रूपमें प्रकट होता है। शरीरपर धब्बोंकी संख्या और रोगग्रस्त तन्त्रिकाओंकी संख्याके आधारपर ही इसका वर्गीकरण किया जाता है एवं उपचार, डोज तथा अवधि तय की जाती है। उपचार बेहद प्रभावशाली, शत-प्रतिशत सफल, सहज, सरल, नि:शुल्क उपलब्ध है—यह है इस रोगका वैज्ञानिक चिकित्सकीय पक्ष। यह संक्रामक भी नहीं है और संसर्गसे नहीं होता।

इसका दूसरा पक्ष है—पापकी, पूर्वजन्मोंसे जुड़े अपराधोंकी धार्मिक अवधारणा। उसीके कारण भ्रम, भय, अन्धविश्वास, आत्मग्लानि, सामाजिक बहिष्कार, घृणा, उपेक्षा, सम्बन्ध-विच्छेद, आत्मघात सब जुड़ा है। इसके विरुद्ध अनेक प्रामाणिक प्रतिष्ठित समाजसेवी संस्थानोंके सहयोगसे मैंने स्वयं देशके सुदूर आदिवासी घूमन्तू क्षेत्रोंमें भय-भ्रम-निवारण शिविर—त्रिसंवाद (पीड़ित-सेवाप्रदाता-समाज) आयोजित किये हैं।

पर जो कुछ मैंने स्वयं अपनी आँखोंसे देखा है, उसे कैसे नकार दूँ! उन दिनों (सन् १९७१—७४ ई०)-में वृन्दावनभूषण परमरसिक विरक्तश्री श्रीपादजीमहाराज, ब्रज अकादमीके अधिष्ठाताकी तरह राजस्थानसरकारद्वारा वृन्दावनमें दिये अशोकमहलमें विराजते थे। दरिद्र गृहस्थसे लेकर राज्यपाल और राष्ट्रपतितक महाराजजीके सम्पर्कमें रहते थे और उनके कृपापात्र थे। जरूरतमन्द साधकों, जिज्ञासुओंके लिये तो महाराजजी अघोषित भगवान् ही थे। उन अपार करुणावान् सिद्ध पुरुषकी सेवा और सन्निधिमें मुझे कई अघटन घटनाएँ घटित होते देखनेका सौभाग्य मिला, उनमेंसे एक घटना इस प्रकार है—

एक बार दक्षिणके एक संन्यासी अकादमी पधारे, उनके कृपालु गुरुने उन्हें अनन्तशयनम् स्वामी नाम दिया था। दैववशात् उन्हें कुष्ठ हुआ था, हाथोंकी दसों अंगुलियाँ गल गयी थीं, चेहरा भी विकृत हो गया था। श्रीमहाराजने मुझे दिखाकर उपचारका आदेश दिया। बहुऔषधि प्रणालीका उपचार सहज उपलब्ध था, पर स्थायी विकृतियोंका तो कोई उपचार न था—सिवा महँगी और समय-साध्य कई बारमें की जानेवाली प्लास्टिक सर्जरीके, जिसके लिये वे स्वयं भी सहमत न थे, पर आत्मग्लानि एवं सामाजिक प्रताड़नासे अत्यन्त दुखी होकर केवल आत्मघातकी बात ही सोचते थे।

और बस, तभी श्रीमहाराजजीका आदेश हुआ, जिसपर नये लोग, विज्ञान कभी विश्वास ही नहीं करेगा। महाराजजीने वाराणसीके अपने एक भक्तके नाम पत्र लिखकर एक सेवकके साथ अनन्तशयनम् स्वामीको वाराणसी भेज दिया। उन्हें छ: माहतक वाराणसीमें रहकर प्रतिदिन तीन बार ब्रह्मवारि जाह्नवीमें स्नान, विश्वनाथदर्शन और २१-२१-२१ बेलपत्र खानेका आदेश दिया। साथ ही अन्य कोई औषधि न लेनेका निषेधात्मक आदेश भी दिया।

मैं शपथपूर्वक इस बातका साक्षी हूँ कि छ: माह बाद वृन्दावन लौटे अनन्तशयनम् स्वामी सर्वांगसुन्दर थे और उनपर कुष्ठकी विकृतियोंका कोई निशानतक शेष न था, मैं स्वयं विश्वास नहीं कर सकता था। मेरा प्रशिक्षण

और शिक्षण सब नकारता था, पर आँखोंमें अंगुली डालनेवाला यह तथ्य मेरे ज्ञानसे परे था! प्रत्यक्षको क्या प्रमाण! स्वयं स्वामी अनन्तशयनम् मेरे साथ श्रीमहाराजके आदेशसे लीला-पुरुषोत्तम, सर्वसमर्थ, नटनागर श्रीराधावल्लभजीकी आरतीमें मुझसे सटे खड़े थे। जय जाह्नवी, जय विश्वनाथ!—**नारायण तिवारी वाशिष्ठ**

(२)

लेन-देन

यह घटना लगभग चालीस वर्ष पूर्व मोतिहारी, पूर्वी चम्पारण (बिहार)-की है।

एक गरीब मास्टर थे। बहुत तंगीमें उनका जीवन बीत रहा था। स्कूलकी थोड़ी-सी तनख्वाह। चार बच्चोंके साथ उनका गुजर-बसर बहुत मुश्किलसे हो पा रहा था।

एक दिन उनका बड़ा बेटा बीमार हो गया। मास्टर साहब उसे अस्पताल ले गये, दवा दिलवायी। स्थिति ठीक हुई तो उसे घर ले आये। घर आते ही उसने कहा—बाबूजी! मेरे बाकीके रुपये भी वापस कर दो न! पिताने पूछा—कैसे रुपये? लड़का—मेरे वही १५० रुपये, जो बाकी हैं, दे दो न? अब मैं जाऊँगा।

पिता—पैसे-रुपये कहाँ हैं मेरे पास?

लड़का—'ये घड़ी है न आपके पास। इसे ही बेंचकर मेरे पैसे दे दो? अब कबतक इन्तजार करता रहूँ? अपना बकाया लेकर मैं जाऊँगा न।'

बात पिताकी कुछ समझमें नहीं आयी। उन्हें लगा, बीमारीसे बच्चा दुर्बल हो गया है और ऐसे ही अनर्गल कुछ भी बड़बड़ा रहा है।

कुछ ही दिनों बाद बच्चेकी तबियत पुनः बिगड़ने लगी। उसे वापस अस्पताल लाना पड़ा। डॉक्टरने दवा लिखी। दवा खरीदनेके लिये इस बार मास्टर साहबके पास बिलकुल पैसे नहीं थे। मजबूरन उन्हें अपनी घड़ी बेंचनी पड़ी। दवा १५० रुपयेकी आयी।

जब वे दवा लेकर बच्चेके पास गये, तब लड़केने हाथ बढ़ाकर दवा ले ली। उसके चेहरेपर सन्तोष छलक आया। उसने कहा—'हाँ, ठीक है। अब मैं जाता हूँ।' हाथमें दवा थामे लड़केने सदाके लिये आँखें बन्द कर लीं। अवाक् खड़ा पिता पहले कहे हुए उसके शब्दोंका सामंजस्य बिठाता रहा, उसे समझनेका प्रयत्न करता रहा।

क्या जीवनके सब रिश्ते लेन-देनका हिसाबमात्र ही नहीं हैं?—**डॉ० अरुणा 'अनु'**

(३)

गिरावटके समयमें भी ईमानदारी

वैसे तो जीवनमें ढेर सारे बुरे अनुभवोंके साथ अच्छे अनुभव भी होते रहते हैं, लेकिन कुछ अनुभव ऐसे होते हैं, जो भूले नहीं जा सकते और उन्हें भूला जाना भी नहीं चाहिये। ऐसा ही एक अनुभव प्रस्तुत है—

मैं आयुध निर्माणी अम्बरनाथ, महाराष्ट्रमें कार्यरत हूँ। एक दिन (मई २०१६ का दूसरा सप्ताह था) गेटसे अन्दर अपने कार्यालय जाते समय रास्तेमें एक समवयस्क स्त्री कर्मचारीने मुझे रोककर ललितासिंह नामक स्त्रीके बारेमें पूछा। मैंने उसे बताया कि मेरे सिवा सिंह सरनेमकी कोई स्त्री निर्माणीमें नहीं है। मैंने पूछताछका कारण जानना चाहा तो पता चला साथमें खड़े लड़केको केनरा बैंक, ईस्टेट शाखाके सामने एक ए० टी० एम० कार्ड मिला है, जिसके साथ पर्चीमें पिननम्बर भी है। मैंने कहा कि रक्षा-मन्त्रालयकी दूसरी निर्माणी एम०टी०पी०एफ० जो कि बगलमें है; में यह महिला हो सकती है। मैं पूछताछ करूँगी, किंतु तुम भी थोड़ा ध्यान रखना। वह लड़का लैब अनुभागमें परीक्षक पदपर था। डेढ़-दो वर्ष पूर्व ऐसे कई लड़के विभिन्न पदोंपर नियुक्त हुए थे, जिन्हें हम लोग अभीतक ठीकसे पहचान भी नहीं पाये हैं।

मैंने कार्यालय पहुँचकर एम०टी०पी०एफ० के एक्सचेंज और कर्मचारी स्टॉफसे सम्बन्धित अनुभागोंमें पूछताछ किया तो ललितासिंहका पता चल गया। उस

कार्यालयके जो सज्जन मुझे फोनपर मिले, उन्हें उस लड़केसे पहले ही सूचना मिल चुकी थी। बादमें मैं यह घटना भूल गयी। शायद तीसरे दिन वह लड़का दिखा तो मुझे फिर यह घटना याद आ गयी। पूछनेपर पता चला कि ललितासिंहने उसी दिन आकर ए० टी० एम० कार्ड ले लिया था। उनके खातेमें ७० हजारसे ऊपर रुपये जमा थे। वे खुशीसे रो पड़ी थीं।

मुझे आज भी यह सोचकर आश्चर्य होता है कि इस गिरावटके समयमें जबकि लोग दूसरेका पैसा-सम्पत्ति हड़पनेको तैयार बैठे हैं; उस लड़केने निर्लिप्तभावसे ए० टी० एम० कार्ड वापस कर दिया।—**सुश्री उर्मिलासिंह**

(४)

अनूठी ईमानदारी

इस घोर कलिकालमें आज जहाँ मानव बेईमानी एवं पराये धनको चोरी एवं अन्यायपूर्वक हड़पनेमें लगा हुआ है, वहीं यह घटना मानव-समाजके समक्ष ईमानदारीका अद्भुत उदाहरण है। यह घटना ७ जून, २०१५ ई० की है। मेरा पुत्र जूनकी छुट्टीमें अपने परिवारके साथ देहरादूनसे जनता एक्सप्रेससे लौट रहा था। उसको बरेली जंक्शनपर उतरना था। सारा सामान उतारकर सब लोग स्टेशनपर उतर गये, जल्दीबाजीमें मेरे पुत्रकी सोनेकी अँगूठी अंगुलीसे निकलकर ए०सी० कोचमें कहीं गिर गयी, परंतु उसे इसका पता नहीं चला। वह स्टेशनपर Waiting room (वेटिंग रूम)-में ठहरने चला गया, तब बादमें पता चला कि अँगूठी गिर गयी है। मेरे पुत्रने अनुमान लगाया कि अँगूठी ट्रेनके कोचमें ही गिर गयी है, तबतक ट्रेन जा चुकी थी। मेरे बेटेने इस सम्बन्धमें स्टेशनमास्टरसे बात की, जो कि एक सज्जन व्यक्ति थे, उन्होंने बताया कि अँगूठी मिलना मुश्किल है, फिर भी टी०टी०ई० से बात करके देखते हैं। स्टेशनमास्टरने ट्रेनके ड्राइवरसे बात की तथा ड्राइवरने कोचके टी०टी०ई० महोदयसे बात की तो उन्होंने बताया कि अँगूठी उनके पास है तथा अगले दिन जब वह ट्रेन लेकर बरेली पहुँचेंगे तब अँगूठी मिल जायगी। मेरा बेटा जब अगले दिन बरेली गया, तब वे टी०टी०ई० महोदय अँगूठी लेकर ट्रेनके कोचमें दरवाजेपर खड़े थे तथा उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक वह अँगूठी मेरे बेटेको दे दी। उन महोदयकी कर्तव्यनिष्ठा और ईमानदारी स्तुत्य है। मेरा पूरा परिवार उनकी मंगलकामना करता हुआ भगवान्‌से उनके स्वस्थ एवं समृद्ध जीवनके लिये प्रार्थना करता है। कलियुगमें ऐसे महापुरुष धन्य एवं विरले हैं।—**प्रेमशंकर मिश्रा**

(५)

कर्जका भय

बात पहलेकी है। एक बार हीरालाल नामक एक किसान आया और मुझसे पूछने लगा—'तुम सागरमलजीके लड़के हो क्या?' मेरे 'हाँ' कहनेपर वह सौ रुपये निकालकर देने लगा और बोला—'बहुत दिन हुए मैं तुम्हारे पिताजीसे एक सौ रुपये उधार ले गया था। उस समय तुम बहुत छोटे थे। अबतक मैं वे रुपये नहीं लौटा सका। अब मेरे पास रुपये जुटे हैं, तब लेकर आया हूँ।' मैं उसकी ओर देखता रह गया। तब उसने फिर कहा—'मैं तुम्हारे पैर पकड़ता हूँ। मुझे कर्जसे मुक्त कर दो। मैं ब्याज नहीं दे सकूँगा। किसी तरह बड़ी कठिनतासे रुपये इकट्ठे कर पाया हूँ। मुझे कर्जका बड़ा भय है, बाबू!' यों कहकर वह बार-बार हाथ-पैर जोड़ने लगा।

मैंने सोचा कितना ईमानदार और कर्जसे डरनेवाला है यह बूढ़ा किसान। बड़े-बड़े लोग भी आज कानूनसे बचकर रुपये हजम कर जाते हैं। मैंने चाचाजीसे बिना पूछे ही रुपये ले लिये तथा उससे कह दिया—'तुम कर्जसे मुक्त हो गये।' वह प्रसन्न होकर चला गया।

ये रुपये लगभग पचीस वर्ष पहलेके थे। हमारे पास कोई भी हिसाब नहीं था। यहाँतक कि चाचाजीको भी याद नहीं था।

किसानकी इस ईमानदारीको देखकर भगवान्‌से यही प्रार्थना की जाती है कि हम सबको भगवान् ऐसी ही सद्‌बुद्धि दें।—**हरीराम केडिया**

मनन करने योग्य

सिद्धिका आधार—श्रद्धा

प्राचीन समयकी बात है। सिंहकेतु नामक एक पंचालदेशीय राजकुमार अपने सेवकोंको साथ लेकर एक दिन वनमें शिकार खेलने गया। उसके सेवकोंमेंसे एक शबरको शिकारकी खोजमें इधर-उधर घूमते एक टूटा-फूटा शिवालय दीख पड़ा। उसके चबूतरेपर एक शिवलिंग पड़ा था, जो टूटकर जलहरीसे सर्वथा अलग हो गया था। शबरने उसे मूर्तिमान् सौभाग्यकी तरह उठा लिया। वह राजकुमारके पास पहुँचा और विनयपूर्वक उसे शिवलिंग दिखलाकर कहने लगा—'प्रभो! देखिये, यह कैसा सुन्दर शिवलिंग है! आप यदि कृपापूर्वक मुझे पूजाकी विधि बता दें तो मैं नित्य इसकी पूजा किया करूँ।'

निषादके इस प्रकार पूछनेपर राजकुमारने प्रेमपूर्वक पूजाकी विधि बतला दी। षोडशोपचार पूजनके अतिरिक्त उसने चिताभस्म चढ़ानेकी बात भी बतलायी। अब वह शबर प्रतिदिन उस शिवलिंगको स्नान कराकर चन्दन, अक्षत, वनके नये-नये पत्र, पुष्प, फल, धूप, दीप, नृत्य, गीत, वाद्यके द्वारा भगवान् महेश्वरका पूजन करने लगा। वह प्रतिदिन चिताभस्म भी अवश्य भेंट करता। तत्पश्चात् वह स्वयं प्रसाद ग्रहण करता। इस प्रकार वह श्रद्धालु शबर पत्नीके साथ भक्तिपूर्वक भगवान् शंकरकी आराधनामें तल्लीन हो गया।

एक दिन वह शबर पूजाके लिये बैठा तो देखता है कि पात्रमें चिताभस्म तनिक भी शेष नहीं है। उसने बड़े प्रयत्नसे इधर-उधर ढूँढ़ा, पर उसे कहीं भी चिताभस्म नहीं मिली। अन्तमें उसने स्थिति पत्नीसे व्यक्त की। साथ ही उसने यह भी कहा कि 'यदि चिताभस्म नहीं मिलता तो पूजाके बिना मैं अब क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकता।'

स्त्रीने उसे चिन्तित देखकर कहा—'नाथ! डरिये मत। एक उपाय है। यह घर तो पुराना हो ही गया है। मैं इसमें आग लगाकर उसीमें प्रवेश कर जाती हूँ। इससे आपकी पूजाके निमित्त पर्याप्त चिताभस्म तैयार हो जायगी।' बहुत वाद-विवादके बाद शबर भी उसके प्रस्तावसे सहमत हो गया। शबरीने स्वामीकी आज्ञा पाकर स्नान किया और उस घरमें आग लगाकर अग्निकी तीन बार परिक्रमा की, पतिको नमस्कार किया और सदाशिव भगवान्‌का हृदयमें ध्यान करती हुई अग्निमें घुस गयी। वह क्षणभरमें जलकर भस्म हो गयी। फिर शबरने उस भस्मसे भगवान् भूतनाथकी पूजा की।

शबरको कोई विषाद तो था नहीं। स्वभाववशात् पूजाके बाद वह प्रसाद देनेके लिये अपनी स्त्रीको पुकारने लगा। स्मरण करते ही वह स्त्री तुरंत आकर खड़ी हो गयी। अब शबरको उसके जलनेकी बात याद आयी। आश्चर्यचकित होकर उसने पूछा कि 'तुम और यह मकान तो सब जल गये थे, फिर यह सब कैसे हुआ?'

शबरीने कहा—'आगमें मैं घुसी तो मुझे लगा कि जैसे मैं जलमें घुसी हूँ। आधे क्षणतक तो प्रगाढ़ निद्रा-सी विदित हुई और अब जगी हूँ। जगनेपर देखती हूँ तो यह घर भी पूर्ववत् खड़ा है। अब प्रसादके लिये यहाँ आयी हूँ।'

निषाद-दम्पती इस प्रकार बातें कर ही रहे थे कि उनके सामने एक दिव्य विमान आ गया। उसपर भगवान्‌के चार गण थे। उन्होंने ज्यों ही उन्हें स्पर्श किया और विमानपर बैठाया, उनके शरीर दिव्य हो गये। वास्तवमें श्रद्धायुक्त भगवदाराधनाका ऐसा ही माहात्म्य है। [**स्कन्दपुराण**]

‘कल्याण’के पाठकोंसे नम्र निवेदन

फरवरी माह सन् २०१७ ई० का अङ्क आपके समक्ष है। यह अङ्क उन सभी ग्राहकोंको भी भेजा गया है, जिनको सन् २०१७ ई० का विशेषाङ्क **‘श्रीशिवमहापुराणाङ्क’** वी०पी०पी० द्वारा भेजा गया है, लेकिन उसका भुगतान हमें प्राप्त नहीं हो पाया है। जिन ग्राहकोंकी वी०पी०पी० किसी कारणसे वापस हो गयी है, उनसे अनुरोध है कि सदस्यता-शुल्क मनीआर्डर/ड्राफ्टसे भेजकर रजिस्ट्रीसे पुन: मँगवानेकी कृपा करेंगे। वी०पी०पी०से पुन: मँगवाने-हेतु अनुरोध-पत्र भेजना चाहिये।

जिन ग्राहकोंको सदस्यता-शुल्क भेजनेके उपरान्त भी उनके रुपये यहाँ न पहुँचने अथवा उनके रुपयोंका यहाँ समायोजन आदि न हो सकनेके कारण वी०पी०पी०से अङ्क प्राप्त हो गया है, उनसे अनुरोध है कि वे किसी अन्य व्यक्तिको वह अङ्क देकर ग्राहक बना दें और उनका नाम, पूरा पता तथा अपनी ग्राहक-संख्या आदिके विवरणसहित हमें भेज दें, जिससे उन्हें नियमित ग्राहक बनाकर भविष्यमें ‘कल्याण’ सीधे उनके पतेपर भेजा जा सके। यदि नया ग्राहक बनाना सम्भव न हो तो पूर्व जमा रकमकी वापसी या समायोजनहेतु पत्र भेजना चाहिये।

व्यवस्थापक—**‘कल्याण-कार्यालय’, पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ०प्र०)**

श्रीमहाशिवरात्रिपर्वपर पाठ-पारायण एवं स्वाध्याय-हेतु प्रमुख प्रकाशन
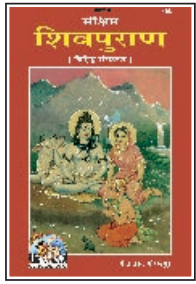
संक्षिप्त शिवपुराण, सचित्र (मोटा टाइप) कोड 1468, विशिष्ट संस्करण, सजिल्द—इस पुराणमें परात्पर ब्रह्म श्रीशिवके कल्याणकारी स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, रहस्य, महिमा और उपासनाका विस्तृत वर्णन है। इसमें भगवान् शिवके उपासकोंके लिये यह पुराण संग्रह एवं स्वाध्यायका विषय है। मूल्य ₹२५०, सामान्य संस्करण **(कोड 789)** मूल्य ₹२००, **(कोड 1286)** मूल्य ₹२०० गुजराती, **(कोड 975)** मूल्य ₹२०० तेलुगु, **(कोड 1937)** बँगला मूल्य ₹१६०, **(कोड 1926)** मूल्य ₹१७५ कन्नड, **(कोड 2043)** मूल्य ₹२०० तमिल भी उपलब्ध।

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
2020	**शिवमहापुराण**-मूलमात्रम्	२५०	1156	**एकादश रुद्र (शिव)**-चित्रकथा	५०	228	**शिवचालीसा**-पॉकेट साइज	३
1985	**लिङ्गमहापुराण**-सटीक	२००	204	**ॐ नम: शिवाय** ,,	२५	1185	**शिवचालीसा**-लघु	२
1417	**शिवस्तोत्ररत्नाकर**-सानुवाद	३०	1343	**हर हर महादेव** ,,	२५	1599	**श्रीशिवसहस्र**...नामावलि...	८
1899	**श्रावणमास-माहात्म्य** ,,	३२	1367	**श्रीसत्यनारायणव्रतकथा**	१२	230	**अमोघ शिवकवच**	३
1954	**शिव-स्मरण**	१०	563	**शिवमहिम्न:स्तोत्र**	५	1627	**रुद्राष्टाध्यायी**-सानुवाद	३०

बहुत दिनोंसे अनुपलब्ध पुस्तकें—अब उपलब्ध

संत-अङ्क (कोड 627)—इसमें उच्चकोटिके अनेक संतों—प्राचीन, अर्वाचीन, मध्ययुगीन एवं कुछ विदेशी भगद्विश्वासी महापुरुषों तथा त्यागी-वैरागी महात्माओंके ऐसे आदर्श जीवन-चरित्र हैं। मूल्य ₹१८०

अन्त्यकर्म-श्राद्धप्रकाश (कोड 1593) ग्रन्थाकार—इस ग्रन्थमें मूल ग्रन्थों तथा निबन्ध-ग्रन्थोंको आधार बनाकर श्राद्ध-सम्बन्धी सभी कृत्योंका साङ्गोपाङ्ग निरूपण किया गया है। ग्रन्थके प्रारम्भमें आये हुए शताधिक प्रमाणोंको हिन्दी-अनुवादके साथ दिया गया है। ग्रन्थमें मूल प्रयोग-भाग संस्कृतमें तथा प्रक्रिया-सम्बन्धी सभी निर्देश हिन्दीमें दिये गये हैं। मूल्य ₹१३०

श्रीरामचरितमानस-ग्रन्थाकार (कोड 1318) मूल-रोमन-वर्णान्तर, अंग्रेजी अनुवाद। मूल्य ₹३००

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५**

प्र० ति० २०-१-२०१७
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR–13/2017–2019
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR–03/2017–2019

नवीन प्रकाशन—अब उपलब्ध
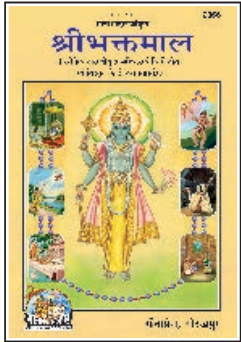
श्रीभक्तमाल (कोड 2066)—भक्तमाल परमभागवत श्रीनाभादासजी महाराजकी काव्यमयी रचना है। इसमें चारों युगों, विशेषकर कलियुगके भक्तोंका बड़े ही रोचक ढंगसे वर्णन हुआ है। सन् २०१३ ई० में कल्याणके विशेषांकके रूपमें भक्तमाल-अंकका प्रकाशन हुआ। विशेषांककी पृष्ठ-संख्या सीमित होनेके कारण उसमें भक्तोंकी कथाको अत्यन्त संक्षेपमें ही देना पड़ा। अब विस्तृत व्याख्याके साथ भक्तमालको ग्रन्थरूपमें प्रस्तुत किया जा रहा है। आशा है पाठक-पाठिकागण इस भक्तमालको पढ़कर लाभान्वित होंगे। मूल्य ₹२३०

कल्याण विशेषांकके रूपमें प्रकाशित भक्तमाल-अंक भी उपलब्ध (**कोड** 1947)। मूल्य ₹१३०

आदर्श बाल-कहानियाँ (कोड 2067)—चार रंगों एवं आर्ट पेपरपर छपी प्रस्तुत पुस्तकमें भगवान् परशुराम, सत्यकाम जाबाल, नचिकेता, भक्त हनुमान्, भीष्मपितामह, कबीर, नानकदेव आदिके विषयमें सरल भाषामें जानकारी दी गयी है। मूल्य ₹ २५

आदर्श बाल-कथाएँ (कोड 2068)—चार रंगों एवं आर्ट पेपरपर छपी प्रस्तुत पुस्तकमें रामायण एवं महाभारतको कथाके रूपमें एवं श्रीकृष्ण, श्रवण कुमार, प्रह्लाद, ध्रुव आदिके चरित्रका वर्णन अत्यन्त सरल भाषामें किया गया है। मूल्य ₹ २५
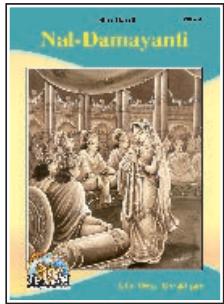
Nal-Damayanti (Code 2064)—[‘नल-दमयन्ती’ का अंग्रेजी अनुवाद] पुस्तकाकार—महाभारतके आधारपर ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाद्वारा लिखा गया नल-दमयन्तीके चरित्रका मनोहर चित्रण। मूल्य ₹5 (**कोड** 273) हिन्दी, (**कोड** 645) तमिल, (**कोड** 916) तेलुगु, (**कोड** 836) कन्नड़, (**कोड** 1059) गुजराती, (**कोड** 1203) ओड़िआ और (**कोड** 1385) मराठीमें भी उपलब्ध।

Ideal Women (Code 2063)—[‘आदर्श देवियाँ’ का अंग्रेजी अनुवाद]—**पुस्तकाकार**—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाद्वारा पराम्बा सीता, देवी कुन्ती, द्रौपदी, गान्धारीके जीवन-चरित्रका अनूठा चित्रण, जिसमें उनके पति-प्रेम, पति-सेवा, त्याग, सहिष्णुता, निर्भयता आदि गुणोंके विषयमें ऐसा मनोहर वर्णन किया गया है जिसे पढ़कर आँखोंसे प्रेमाश्रु छलक पड़े। मूल्य ₹8 (**कोड** 291) हिन्दी, (**कोड** 1221) ओड़िआ भी।

महाभारत कथा (कोड 2061) मराठी—प्रस्तुत पुस्तकमें भगवान् श्रीकृष्णकी महानताको दर्शाते हुए महाभारतकी कुछ प्रमुख कथाएँ सरल मराठी भाषामें वर्णित हैं। मूल्य ₹३५

***शीघ्र प्रकाश्य-नवीन प्रकाशन*— श्रीसकळसंतगाथा (कोड 2062) मराठी**—प्रस्तुत ग्रन्थमें श्रीज्ञानेश्वर, श्रीनिवृत्तिनाथ, श्रीसोपानदेव, श्रीमुक्ताबाई, श्रीचोखामेळा, श्रीएकनाथ महाराज, श्रीनिळोब महाराज आदि महाराष्ट्रके कुछ संतोंकी वाणियाँ प्रकाशित की गयी हैं। श्रीतुकाराम गाथा एवं नामदेवांची गाथा अलगसे प्रकाशित है।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५**